कौमुदी

[कहानियाँ]

लेखिका

शिवरानी देवी

सरस्वती-प्रेस,

बनारस ।

मुद्रक—
श्री गुरुराम विश्वकर्मा, साहित्य-रत्न,
सरस्वती-प्रेस, बनारस कैंट।

प्रथम संस्करण
मई,
१९३७
मूल्य १॥)

अनुक्रम

तर्का

रामदीन बड़ा शौकीन है। कुश्ती लड़ना और बाँसुरी बजाना यही उसके दो काम हैं। उसका बड़ा भाई रामजस कितनी मेहनत से गृहस्थी चलाता है, यह उसे नहीं सूझता।

एक दिन उसकी माता गुलाबी ने उसकी खबर ली—क्यों रामू, तुम कब तक काम से इतना जी चुरावत रहि हौ? तुमरे बाप का मरे पाँच साल होइ गये, तब से रामजस आपन देह गलाये डारत है, और तुम का जैसे कुछ गम नहीं है।

बाहर से रामजस हाथ में दूध की दुधेंड़ी लिए आ रहा था। माँ से बोला—क्या है अम्माँ, केहिका बकत हौ?

गुलाबी ने कहा—कुछऊ नाहीं है बेटा, यही रामू का समझाइत है

कि तुम बैठे-बैठे खैहो। तुमहू का कुछ काम करे का चाही, कि न चाही?

रामजस स्नेह-भरे स्वर में बोला—खेलन खान दे अम्माँ, अबै ओह की उमरि का है। समुझ आए जाई, तो आपै करी।

'मोरे लेखे तो तुमहूँ अबै लड़का हो। तुमरे दादा होते तो का तुम न खेलतेउ।'

'मुदा अब तो मैं ओहिके बाप का जगह हौं।'

'ई तना तो ऊ औरो सेर होइ जाई।'

'गिरिहस्ती के चरखा में पड़कर सब की मोटाई झर जात है, अम्माँ!'

रामजस चला गया, तो रामदीन हँसकर माँ से बोला—भैया सब जानत हैं। तुमहीं का हमरे काम की जल्दी परी है।

गुलाबी चिढ़कर बोली—का ऊ हमार लरिका न होय? बेचारा झुराय के काँटा होइ गवा है। न जाने भगवान् तोहिका कब बुद्ध देहैं।

रामदीन हँसा—भगवान् बुद्ध न दें, तौने अच्छा।

'तू बेसरम है।'

'तुमरी बला से।' यह कहता हुआ वह चला गया।

• • •

एक साल बीत गया। दो नई घटनाएँ हो गईं। रामजस के लड़का पैदा हुआ और गुलाबी पोता खेलाने का अरमान लिए परलोक सिधारी।

क्रिया-कर्म से छुट्टी पाकर एक दिन रामजस ने भाई से कहा—अब तो घर का कुछ काम देखो। बहुत दिन खेल-खा लिए। अब बैठे-बैठे काम न चलेगा।

रामदीन मुँह बनाकर बोला—मैं इससे ज़्यादा काम नहीं कर सकता।

रामजस हँसकर बोला—तुम कौन काम के नगीच जात हौ कि अब वहि से डेर न करिहौ ?

रामजस की स्त्री धर्मी घर से निकलकर बोली—बिगाड़ेव तो तुमहा. अब काहे का रोवत हौ। तब तो कहत रहेव कि लरिका है। तौन अब का बूढ़ होइगा ?

'तोहिका पंचायत करै का कौन बुलावत है ?'

उस दिन से रामदीन भाई से मुँह फुलाये रहने लगा। धर्मी भी कुछ न बोलती। रामदीन चौके में जाता तो चुपके से थाली परोस देती। जानती थी, मैं कुछ भी बोली, तो रामजस प्राण ही ले लेगा।

जब कई महीने इसी तरह बीत गये और रामदीन ने अपनी टेक न छोड़ी, तो रामजस को एक बात सूझी। क्यों न इसका ब्याह कर दूँ ? ब्याह की बेड़ी पाँव में पड़ते ही सारी गर्मी उतर जायगी। एक दिन उसने रामदीन से यह प्रस्ताव कर डाला।

रामदीन उदासीन भाव से बोला—हमरे बियाह की अबै कौन जल्दी परी है। सच तो ई है कि हम ई रोग नाहीं पाला चाहित।

रामजस चकराया। मगर फिर समझा, शायद संकोच के मारे इन्कार कर रहा है। समझाने लगा, ब्याह न होगा, तो बिरादरी में कितनी हँसी होगी। अकेली औरत घर का सारा काम कैसे सँभाल सकती है। माँ थी, तो बहुत-सा काम उसकी मदद से हो जाता था। अब तो धर्मी अकेली है। लड़का सँभाले कि काम करे।

'रामजस पर कोई असर न हुआ। बोला—तुमार मन चाहे एक ब्याह और करि लेव। हम सादी-ब्याह के नगीच न जाब।

'ब्याह तो तुम का करै का परी रामू, चाहे टेढ़े करौ चाहे सीधे ।'

'हम नाहीं चाहित कि घर माँ रार होय। तुम अब बाल-बच्चे वाले हौ। कौन जाने, चले कि न चले।'

'तो मैं तोर हाथ-पैर तो नाहीं काटे लेत हौं। जब न चलै, तो आपन आधा लेके अलग कमायो खायो, और का करिहौ।'

'महिका कौन अटक परी है कि जंजाल वेसाहौं। मैं ऐसे नीक हौं।'

'तो ई काहे नाहीं कहतेव कि कायर हौ। बे सिर पैर की बात काहे करत हौ। ई ढंग से गिरिस्ती कै दिन चली?'

'गिरिस्ती का हम कौनो ठीका लिए हन। चलै चाहे होरी माँ जाय, हमार रहब तुमका अच्छा न लगत होय, तो हम कतौं चला जाई।'

रामजस ने देखा, होम करते हाथ जलते हैं और भाई लड़ने पर कमर कसे बैठा है, तो उसने दुधेंड़ी उठाई और भैंस दुहने चला गया। रामदीन ने भी लँगोट उठाया और अखाड़े की तरफ़ चल दिया।

घर में एक ही भैंस थी और रामदीन इधर बराबर उसका सारा दूध अकेला पी जाता था। रामजस के लिए चिल्लू भर भी न बचता। अपने लड़के के लिए उसने एक बकरी पाल ली थी; मगर आज कुछ ऐसा संजोग हुआ कि बकरी का दूध बिल्ली उड़ा गई, और धर्मी ने आधा दूध निकालकर बच्चे को पिला दिया। रामदीन अखाड़े से लौटा तो देखा, दूध केवल आधा लोटा है, तो लोटे को ज़मीन पर पटक दिया। धर्मी ने ज़मीन में फैले हुए दूध की ओर ताकते हुए कहा—आज लड़का थोड़ा-सा दूध पी गया, तो क्या उसकी जान लोगे? एक दिन कम ही पी लेते, तो क्या दुबले हो जाते? राम-राम! सारा दूध लेके लड़ा दिया।

रामदीन क्रोध में बावला हो गया था।

'तुम समझत होइहौ कि हमार भतार घर के मालिक हैं, हम जौन चाहे करी। तौ ई अन्धेर न होए पाई। रामदीन कोऊ की धौंस सहैया न होय।'

धर्मी ने भी गर्म होकर कहा—तो क्या तुमरे कारन लरिका का मार नाईं ?

'अच्छा अब चुप रहौ। समझत होइहौ रामदीन बच्चा है। मुदा हमरे चार आँखें हैं। सब रंग-ढंग देखित है। हम कौनो कुली कहार नाहीं हन। आज भैया आवत हैं, तो हम सब झगड़ा तोर देइत है।'

• • •

रात को जब रामजस आया, तो दोनों भाइयों में बात-चीत हुई।

'भैया, हमार गुजर अब तुमरे साथ न होई।'

'तो भाई, जैसी तेरी इच्छा हो, कर। मैं तो तुझसे हार गया।'

'मैं तुम्हारा और तुम्हारी स्त्री का ग़ुलाम नहीं हूँ!'

'तो कौन तुझे ग़ुलाम बनाता है, भाई! मैं तो कहता हूँ, जैसा तुझे अच्छा लगे वह कर, मुझको कुछ उजुर नहीं है।'

'मेरा बटवारा कर दो, बस! और मैं कुछ नहीं चाहता।'

रामजस हँसकर बोला—मैं कुछ न कहूँगा। जो कुछ तेरी इच्छा हो ले ले, और जो कुछ तेरा जी चाहे मुझे दे दे।

'तुम इसी पर लगे हो कि मैं घर छोड़कर निकल जाऊँ ?'

'कभी नहीं। मैं इस पर लगा होता, तो अब तक तुम यहाँ न होते। मैंने तुम्हें कभी भाई नहीं समझा। मेरे लिए जैसे राम अवतार है, (बेटा) वैसे ही तुम हो। मैं उसे ज़्यादा और क्या किये देता हूँ ?'

'यह सब चालें हैं, मैं भी अब बच्चा नहीं हूँ।'

'तो यही फ़ैसला है?'

'हाँ!'

'अच्छी बात है। तुम इस घर में रहो। मैं पुराने घर में चला जाता हूँ।'

रामदीन निर्भयता से हँसकर बोला—अबै लों तो सुनत रहेन कि मेहरिया तिरिया चरित्तर करत हैं, अब मालुम भवा कि तुमहूँ ई गुन में पक्के हो।

जहाँ मन में इतना मैल हो, वहाँ मेल की क्या आशा हो सकती थी; लेकिन रामजस ने जब धर्मी से यह बात कही, तो उसने घर छोड़ने से साफ़ इन्कार किया—का हमार घर न होय कि निकल जाई। हम हो छाती फार के कामों करी, हम ही घर छोड़ के निकलिउ जाई! ई हमसे न होई।

रामजस ने आग्रह करके कहा—मुझे जियावा चाहत हौ कि मारा चाहत हौ, तौन कहौ। ई घर में हमार परान न बची।

धर्मी की ज़बान बन्द हो गई। मन में उसे अपने पति की इस कायरता पर खेद हुआ और इतना मुँह से निकल ही गया—हमका तो बहुत समुझावत हौ, भाई से बोलत काहे थरथरात हौ।

रामजस ने आँखें तरेर कर कहा—का बेबात की बात बकत हौ। जौन कहित है, तौन सुनो। धर्मी चुप हो गई।

रामजस उसी दिन वह घर छोड़कर पुराने खँडहर में जा बसा, जहाँ गाय-बैल बँधते थे। रामदीन के कटु व्यवहार से उसका जी इतना दुःखी

हुआ कि उसने खेत-बारी, गाय-बैल सब कुछ छोड़ दिया। जीवन में जिस व्यवहार को वह परम सत्य समझता था, जब वही मिथ्या हो गया, तो फिर इस खेत-बारी और बरतन-भाँड़े में क्या रखा है! जब ईश्वर में ही सन्देह हो गया, तो ईंट-पत्थर के देवताओं में क्या श्रद्धा होती? भाई उसके लिए जीवन का सत्य था। दोनों एक ही बाप से जनमे, एक ही माँ का दूध पीकर पले, एक ही गोद में खेले। जब से उसने होश सँभाला, उसके हरेक स्वप्न में रामदीन उसके साथ था। उनमें कभी किसी बात पर द्वेष भी हो सकता है, यह बात उसकी कल्पना में भी न आई थी। स्त्री आई; लेकिन वह पराये घर की लड़की थी, और ज़रा-सी बात में फिर पराई हो सकती है। लड़का आया; पर अभी उसके साथ जो प्रेम है, वह केवल नाते का प्रेम है। केवल अंकुर है, जो ज़मीन की गहराई तक नहीं पहुँचा है। मगर रामदीन से जो प्रेम है, वह तो देह के एक-एक रोएँ में और प्राण की एक-एक साँस में भिन गया है, उतना ही प्रिय और उतना ही सत्य हो गया है, जितना स्वयं अपना आप।

उसी भाई को अपना सब कुछ देकर रामजस मजूरी करने लगा।

• • •

रामजस अब बड़े सवेरे उठकर शहर चला जाता, जो चार कोस पर था, और नौ बजे रात को घर आता। यही मजूरी अब उसके जीवन का आधार थी; लेकिन कभी-कभी उसे रास्ता नाप कर घर लौटना पड़ता। कोई काम न मिलता। उस दिन घर में उपवास हो जाता था।

इस दौड़-धूप और कड़ी मिहनत और पेट काट-काट कर दिन

काटने का यह फल हुआ कि साल भी न बीतने पाया था कि उसे रात को धीमा-धीमा ज्वर आने लगा; पर उसने धर्मी से अपनी हालत छिपाई, और काम करता गया। कमज़ोरी दिन-दिन बढ़ती जाती थी, जल्दी से थक जाता था और चलते समय आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगती थीं; लेकिन किसी से कुछ कहने का हियाव न पड़ता था।

एक दिन वह काम पर जाने लगा, तो धर्मी ने उसके गले हुए शरीर को देख कर पूछा—तुम्हार का दसा होय रही है ? तुमका का भवा है ?

रामजस ने टालकर कहा—कुछ नाहीं, होई का। मजे में तो हौं।

'छाती कै हाड़ निकर आये हैं, चाहे तो ठठरी गिन लेव। कहत हौ भवा का है। तुम का करै पर लागे हौ ? का जीव दे के काम करिहौ ? चिरुआ भर गोरस पाय जात रह्यो, तौन नोहर होय गवा। भाई तो मोटात चला जात है, चाहत रहा न कि ऊ खात और तुमरी देह लागत।'

'तोरी आँखन में तो रामदीन खटका करत है।'

'तुमका मनई की पहचान न आई है, न कबों अइहै। भाई के खातिन संडासी होय गयो, अब ऊ बातो नाहीं पूछत। मजे से खात है और मोछन पर ताव देत है। अदमी होत, तब तो अदमी के व्यौहार करत।'

'का बक-बक करत हौ। तुम समझत होइहौ कि ऊ और हम दुइ हन। हम तो एकै समझित है। हम पिछले जलम मां रामदीन के रिनिया रहा होब। वहै रिन चुकाय दीन।'

राम अवतार बाहर से आकर खाना माँगने लगा।

धर्मी ने कहा—कटोरा माँ रोटी रखी है, निकाल के खा ले।

'हम तो दूध-रोटी खाबै।'

'दूध कहाँ है बेटा! दूध तो सपना होय गवा।'

इसके आगे वह कुछ न बोल सकी। आँखें डबडबा आईं। जिस गृहस्थी को अपने बाल-बच्चों के लिए मर-मर कर जोड़ा था, वह अब पराई हो गई। भाड़ लीप कर हाथ काला करने के सिवा और क्या मिला!

राम अवतार ने माँ की आँखों में आँसू देखे, तो बिना ज़िद किये बाहर चला गया। पाँच साल का बच्चा था; पर भोला नहीं, बड़ा समझदार। यह दुःख का प्रसाद है।

धर्मी को बेटे का बिना कुछ खाये चला जाना शूल-सा लगा। रामजस से बोली—यह है तुमरी साधुता के फल। साधु उनका होय के चाही, जिनके नाम का कोउ रोअइया न होय। जेके बाल-बच्चे होयँ ऊ साधु बने तो हत्यारा है!

रामजस ने कठोर स्वर में कहा—अच्छा अब चुप रह!

'चुप तो हौं, और का करत हौं।'

'चुप तो नाहीं हस, घड़ी भर से चरखा चलाय रही हस।'

धर्मी खून का घूँट पीकर चली। रामू भी काम पर चला गया।

• • •

रामदीन बिन-ब्याहा है; इसलिए किसी की फ़िक्र नहीं है। खेती-बारी मजूरों के भरोसे करता है और पैदावार चाहे हो या न हो, उसे कोई चिन्ता नहीं। जब ज़रूरत पड़ती है, कुछ-न-कुछ जायदाद बेच

डालता है। बाग़ बिक गये, जानवर बिक गये, धीरे-धीरे खेतों पर भी ज़वाल आया; लेकिन रामदीन अपने रंग में मस्त है।

एक दिन रामजस धर्मी से छिपाकर भाई के पास गया और बोला—काहे रामू, का घर मिट्टी में मिलाकर ही दम लेहौ ?

रामदीन निर्लज्जता से बोला—हमार घर है, जौन चाहब करब, तुम से मतलब !

रामजस भरे हुए कंठ से बोला—तुम समभत होइहौ कि हमसे कोई मतलब नाहीं ; लेकिन हम अबौं तुमका अपने समभित है। तुमका सुखी देखकर सुखी और दुखी देखकर दुखी होइत है। एक दिन ऐसो आई कि तुमका समभावन वाला कोऊ न रहि जाई। हम तुम से कुछ माँगन नाहीं आये हैं। भगवान् कौनो तराँ हमरौ रोटी चलावत है। मुदा ई घर का हम अपने रकत से बनावा है और एका चौपट होत देख हमार छाती टूक-टूक होइ जात है। जब दादा मरे, तब घर की कौन दसा रही, का तुम नाहीं जानत हौ। हम सब-कुछ तुमका दे दीन तो एके लैने दीन कि तुम सुखी रहो। एके लैने नहीं दीन कि तुम सब माटी में मिलाय के फकीर होइ जाव।

रामदीन उद्दंडता से बोला—हमका का करैका है, जैजात रहे चाहे जाय!। जब लौं है, तब लौं चैन की बंसी बजाइत है। जब न रही, तब देखी जाई।

रामजस ने समभ लिया कि इसको समभाने का कोई नतीजा नहीं। घर लौट आया; मगर बड़ा दुःखी था।

धर्मी ने पूछा—कहाँ गये थे ? जिव अच्छा नहीं है, और बतास

माँ घूम रहे हौ। सुना अब रामू महतो खेतन पर हाथ लगावा चाहत हैं। हमसे ई कुन्याय न देखा जाई, बारी-बगीचा बेचेन, हम चुपाई मारके रह गयेन; मगर खेत न बेचे देब। उनके आगे-पीछे कोऊ न होय, हमरे तो भगवान् का दिया लड़का है। ओहका कुछ चाही कि न चाही ?

रामजस आकाश की ओर देखकर बोला—खेत बेचे चाहे आग लगाय दे। हमका का करै का है। जो जैस करी, आपै भोगी। राम ने छोड़ी अजोध्या, मन भाव सो ले।

धर्मी आँखें निकाल कर बोली—साधु बन के भिखारिन तो बनाय दिह्यो, अब का करै पर लागे हौ। अबौ नाहीं सरमात हो।

'सरमाँव काहे का। का कतो चोरी कीन है ? जौन हमार धरम रहा, तौन कीन। जौन मनई अपने भला सोचे ऊ नीच कहावत है।'

'तुम सोचत होइहौ चार जने साबसी कै दिहेन तो हम देवता होय गये ?'

'हम आपन धरम न छाँड़ब चाहे कोई साबसी करे, चाहे निन्दा करे। सबका नेक-बद भगवान् देखत हैं।'

धर्मी की क्रोधाग्नि प्रचण्ड हो गई। बोली—मत डींग मारौ बहुत। कोऊ की दाल गिर परी, तो कहै लाग हमका तो सूखे नीक लागत है। जो अपने लरकन के मुँह का कौर छीन के कूकुर का खवाय दे, ओहका हम दानी न कहब ! हम ईका पाप समुझित है।

'का बकत हौ। हम जमीन जैजात भाई का दै दीन तो का भवा, तुम का तो गरे लगाये हन और जब लग परान रही, तब लग लगाये रहब। हाँ मरे पीछे का होई, नाहीं जानित।'

धर्मी फिर भी शांत न हुई। उसी स्वर में बोली—तुमरे गरे लगाये से हमका कौन सुख ? गले लगे पेट तो नाहीं भरत। तुमरे मरे पीछे का होई, एह की चिन्ता न करो। जौन अब होत है, तौन तबौ होई। जब तुम का अपने बाल-बच्चन की परवाह नाहीं ना, तो बाल-बच्चौ तुम्हार परवाह नाहीं करत हैं; जौन कुछ उनके सिर परी तौन भोग लेहैं।

रामजस ने फिर आकाश की ओर देखा। धर्मी के मुँह से उसे ऐसे कड़वे शब्द सुनने को मिलेंगे, यह उसने कभी न समझा था। बेशक उसने भाई को अपना सब कुछ दे दिया; लेकिन स्त्री और बच्चे के लिए भी तो रात-दिन मर रहा है। भाई को तो केवल जायदाद दी, इनको तो अपना प्राण दे रहा है। फिर भी इनका मुँह सीधा नहीं है ! उसकी आँखें डबडबा गईं। बोला—फिर तो हमार जीवन बिरथा है।

धर्मी को अब उस पर दया आई। बोली—मैं ई बात तुम्हार दिल दुखावै खातिन नाहीं कहत हौं। मैं तो दुनिया की बात कहत हौं। तुमहीं सोचो, जब तुम दुसरे का अपने लरिका और मेहर से ज्यादा प्यार करिहौ, तो तुम ई आसा कैसे कर सकत हौ, कि उइ तुमार जस गावैं। अगर तुम ऐसन समुझत हौ, तो तुम्हार भूल है।

रामजस को इस कथन की सचाई अब समझ में आ रही थी। बोला—मैं तुम से सच कहत हौं धर्मी, कि मोर मन रामदीन के ब्यौहार से खट्टा होइ गवा। हम ई न जानत रहे कि भाई होय के दगा करी।

आज रामदीन ने आखिर वह बात कह डाली, जो बहुत दिनों से उसके मन में उबल रही थी। वह अपने मन को समझाता था—मैंने कोई अधर्म तो नहीं किया। क्या भाई से थोड़ी-सी जायदाद के लिए

झगड़ा करना भला मालूम होता ? लेकिन उधर रामदीन का निष्ठुर बर्ताव और इधर अपने बाल-बच्चों का कष्ट देख-देखकर उसे रह-रहकर खयाल आता था—मैंने इनके साथ अन्याय किया। मुझे इनके हिस्से की जायदाद भाई को देने का क्या हक़ था; लेकिन इस बात को वह खुलकर न कह सकता था। धर्मा सदा जलाती रहती थी। बिल में छिपे हुए चूहे की तरह यह बात उसके ओठों तक आके रुक जाती थी। आज धर्मा ने जब अपने अन्दर भरा हुआ ग़ुबार निकाल डाला, तो उसे पता लगा कि मेरी नीति ने इसके हृदय पर कितना भयंकर आघात किया है! बोला—लेकिन, कुछ परवाह नहीं, धर्मा! भगवान् ने चाहा, तो इन्हीं हाथों से फिर नई गृहस्थी, नया घर, नई जैजात बना दूँगा।

धर्मा देख रही थी कि मेरी चाल उलटी पड़ रही है। रामजस अपने भाई से कुछ कहने, या पंचों से उस पर कुछ दबाव डलवाने की जगह खुद अपने को होम करने पर तैयार हो रहा है, तो घबड़ा कर बोली—नहीं, नहीं, मैं घर और जैजात नहीं चाहती, मैं तो तुम का चाहत हौं। तुम नीके-नीके रहौ, ई छोड़ के मोका और कुछ न चाही।

रामजस प्रेम-विभोर होकर बोला—मैं जानत हौं धर्मा, लेकिन आपन रम तो ई नाहीं है कि घर लुटाय के घर वालन का बेअवलम्ब कै देई।

'तो का काम के पीछे जान दे देहौ। ऐना में आपन दसा देखौ।'

'देह तुमरे लोगन के काम आ जाय, और का चाही।'

'उमिर भर के काम दुइ-चार साल में पूरा नाहीं होय सकत। देह भगवान् की दीन अमानत है; ई का जो नष्ट करत है, ओहका पाप लागत है।'

'पाप लागै चाहे पुन्न लागै, तुमरे साथ जौन बुराई कीन है, ओह का पराछित तो करही का परी।'

'जौन बात होय गई, सो होय गई। अब पछताये कुछ हाथ न आई। जेहि के भाग का होत है वही भोगत है। संसार में लाखन मनई हैं, जिनके रूख कै छाँहों नाहीं ना। हमरे तो भगवान का दिया घर है। चार दिन में लरिकौ चार पैसा कमाय लागी, सब संकट कट जाई।'

रामजस को पैसों की धुन सवार हो गई। मजूरी करने जाता, तो दोपहर की छुट्टी में भी कुछ-न-कुछ काम करके दो-चार पैसे पैदा कर लेता। और यह लोभ इतना बढ़ गया कि कभी पैसे-धेले का चबेना भी न लेता। घर से गुड़ की पिंडी खाकर जाता और रात को नौ बजे लौटकर ही रोटी खाता। धर्मी समझाती, रोती, काम पर जाने को मना करती; पर रामजस कुछ न सुनता था, और दिन-दिन दुबला होता जाता था।

माघ का महीना था। कई दिन से ठंडी हवा चल रही थी। रात को पाला पड़ता और सवेरे खेतों पर रूई के गोले-से लिपटे हुए नज़र आते। घर से बाहर मुँह न निकालते बनता था; मगर रामजस मुँह-अँधेरे काम पर निकल जाता। पहनने को केवल एक पुराना गाढ़े का सलूका था। ओढ़ने को पुराना कम्मल। हवा सीधे हड्डियों में चुभ जाती। पाँव ठिठुर कर रह जाते। उनमें एक कंकरी भी गड़ जाती तो काँटे-सी लगती। एक दिन वह घर आया तो खाँस रहा था। छाती में दर्द था। धर्मी ने आग से सेंकना शुरू किया। पर, रात भर में खाँसी बढ़ गई। दूसरे दिन निमोनिया हो गया और तीसरे दिन रामजस ने माया-मोह के बन्धन को तोड़ कर परलोक की राह ली।

रामदीन भंग छानकर पड़ा हुआ था। अर्थी को कंधा देने भी न आया। सारे गाँव में उसकी निन्दा हुई; पर मुँह पर कोई कुछ न कह सका। उससे सभी डरते थे।

• • •

कई साल बीत गये। धर्मी और राम अवतार दोनों मजूरी करके अपना निर्वाह करते थे। औरत ज़ात गाँव के बाहर जाते डरती थी कि बदनामी हो जायगी। राम अवतार अब तेरह साल का हो गया था; लेकिन धर्मी उसे भी कहीं न जाने देती। वह उपवास करेगी, फटे पहनेगी; लेकिन लड़के को आँखों की ओट न जाने देगी। उधर रामदीन खेत बेच-बेचकर खाता था और इनको पूछता तक न था।

गाँव में मटर ख़ूब फली थी। सब लड़के अपने-अपने खेत से मटर की फलियाँ तोड़ कर जेब में भर लाते और कूद-कूद कर खाते। राम अवतार किसके खेत में जाय?

एक दिन उसका जी न माना। चुपके से रामदीन के खेत में गया और दोनों जेबें फलियों से भर लीं। दिल में सोच रहा था—अगर रामदीन बोलेगें, तो कह दूँगा, क्या खेत तुम्हारे बाप का है? जैसे तुम हिस्सेदार हो, वैसे मैं हिस्सेदार हूँ।

संयोग से रामदीन उसी वक्त आ पहुँचा। राम अवतार चोरों की तरह छिपने के लिए बिल खोजने लगा। सारी हेकड़ी भूल गई। रामदीन ने उसका हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ धर्मी के पास लाकर बोला—आज तो मैं छोड़े देता हूँ; लेकिन फिर खेत की मेंड़ पर गया, तो टाँग तोड़ दूँगा!

धर्मी ने लड़के की जेब से सारी फलियाँ निकाल कर रामदीन के सामने रख दीं और बोली—अब इसे अपने खेत में देखना तो खोद के गाड़ देना। अभागा मुझसे कहता, तो किसी से माँग लाती। अपनी फलियाँ लेते जाओ।

रामदीन ने दो-चार घुड़कियाँ जमाईं और फलियाँ वहीं छोड़ कर चला गया। उसी वक्त राम अवतार एक छबड़ी में फलियाँ लेकर बाहर निकला और रामदीन के द्वार पर जाकर उसकी गाय के सामने डाल दीं और घर आकर रोने और चचा को गालियाँ देने लगा—खेत इनके बाप का है! बड़े आये वहाँ से धन्ना सेठ बन के। आज छोड़ दीन नाहीं अस पत्थर फेंक के मारित की खोपड़ी खुल जात। जमामार, लुटेरा कहीं का!

धर्मी तिरस्कार-भरी आँखों से उसे देखकर बोली—वाह रे छोकरे, छोटा मुँह बड़ी बात! उसके बाप के नहीं हैं, तो क्या तेरे बाप के हैं? मरे हुए आदमी के नाम को कलंक लगाता है। तेरे बाप को अपना नाम और अपना मरजाद इतना प्यारा था कि जिस दिन भाई ने अपना हिस्सा माँगा, उन्होंने सारे-का-सारा उसे दे दिया, और मरते-मरते मर गये; पर भाई से कभी धेले के रवादार न हुए। तू उसी आदमी का बेटा है। ऐसी बातें मुँह से निकालते तुझे लाज नहीं आती! तेरे बाप ने धन नहीं छोड़ा, जैजात नहीं छोड़ी; लेकिन वह नाम छोड़ गया कि गाँव-भर में लोग उसका परतोख देते हैं। तू देवता का बेटा है, तो देवता बन! कुछ और बनना है, और उनके नाम को कलंक लगाना है, तो मुझे मार डाल, फिर जो इच्छा हो करना।

यह कहकर वह कोठरी में जा बैठी और रोने लगी। अपने पति को उसने उसके मरने के बाद समझा था। उसके जीवन में वह भाईपन के इस ऊँचे आदर्श को न समझ सकी थी, और अब वह यह सोच-सोच कर रोती थी कि उसने अपने पति को कोस-कोस कर कितना अन्याय किया। अगर उसने रामजस को न सताया होता, तो वह क्यों इतनी कड़ी मेहनत करता और क्यों इतना दुःखी होकर संसार से बिदा हो जाता? तब से पति की वह सज्जनता और उदारता उसकी दृष्टि में देवत्व के समीप पहुँच गई थी, और जिस काम की एक दिन निंदा करते वह न थकती थी, उसी काम की प्रशंसा में मानो वह अपने पतिव्रत-धर्म का पालन कर रही थी, और आज उसका लड़का ही बाप के मुँह में कालिख लगा रहा है!

और राम अवतार रो रहा था, इसलिए कि उसने अपनी माता को दुःखी किया। उसके जीवन में जो कुछ सुख था, वह माता का स्नेह था। वह देखता था, माता किस तरह मर-मरकर उसको पाल रही है। खुद नहीं खाती, उसे खिलाती है; खुद रात-रात भर गेहूँ पीसती रहती है, पर उसे कोई बड़ा काम नहीं करने देती। बिपत्ति में उसकी बालक-बुद्धि खूब तेज़ हो गई थी। वह समझता था, चचा ने पिता का सर्वस्व न हर लिया होता, तो क्यों उसकी माता को इतना काम करना पड़ता और क्यों पिता इतनी जल्द मर जाते? उसकी दृष्टि में रामदीन उसका शत्रु था, और किसी तरह उससे इस अन्याय का बदला लेना उसका धर्म था।

लेकिन आज माता की प्रेम से भरी हुई झिड़की ने उसे दिखाया

कि वह कितना नीच, कितना अधम है। वह देवता-जैसे बाप का बेटा होकर इतना लोभी, इतना स्वार्थी, इतना द्रोही! रोते-रोते उसकी हिचकी बँध गई।

उसने आकर माता के चरणों पर सिर रख दिया और बोला—अम्माँ, मुझे क्षमा करो!

माँ ने बालक को छाती से लगा लिया। और सिसकती हुई बोली—क्षमा करती हूँ, बेटा! बस, मेरी यही इच्छा है कि तू अपने बाप जैसा बन। उन्होंने अपनी जिन्दगानी जिस तरह बिताई, उसी तरह तू भी बिता। यही उनका तर्का है। यही तुझे लेना चाहिए।

विध्वंस की होली

निर्मलचंद के जब ४० साल की उम्र में होली के दिन बालक हुआ तब से उनकी स्त्री उत्तमा बड़ी धूम-धाम से होली मनाने लगी है। महीनों पहले ही तैयारी होने लगती है। कहीं दर्ज़ी कपड़े सी रहा है, कहीं हलवाई पकवान बना रहा है, कहीं घर की सजावट हो रही है, कहीं नाच-गाने के लिए नाच-घर बनाया जा रहा है। फाग तो वसन्त से ही शुरू हो जाता था। ग़रीबों को दान भी ख़ूब दिया जाता था। तब से बाबू साहब के तीन लड़के और भी हुए, और होली का समारोह भी पहले से ज़्यादा हो गया। अब होली केवल त्योहार ही नहीं रहा, पावन तिथि भी हो गई है। और उसमें हर साल कोई-न-कोई नई बात रखी जाती है। कभी कोई नाटक खेल लिया, कभी सौ-दो-सौ ग़रीबों को कपड़े

बाँट दिये ।। कभी सारे असामियों का ६ महीने का सूद छोड़ दिया। निर्मलचन्द अच्छे ज़मींदार हैं और कुछ लेन-देन भी करते हैं।

माघ का महीना है। प्रकृति ने रंग और सुगंध की पिटारी खोल दी है। निर्मलचन्द खेतों की बहार देखकर लौटे, तो तुरन्त घर में जाकर उत्तमा से बोले—कुछ तुम्हें खबर है, वसन्त आ रहा है, उपाध्यायजी कह रहे थे।

निर्मलचन्द उन आदमियों में हैं, जिन्हें तिथि, महीने और दिन कभी याद नहीं रहते। सूरज को तो जानते हैं कि पूर्व में निकलता है; लेकिन परिवा का चाँद किधर निकलता है और पूर्णमासी का किधर, यह उनकी समझ में कभी न आया। और आप ने अच्छी शिक्षा पाई है। जवानी में कुछ कविता करने का भी शौक़ था, और आजकल भी राजनीति का बराबर मुताला करते रहते हैं।

उत्तमा ने पानदान खोलकर उनके लिए पान लगाते हुए कहा—सच! तुमने तो बड़े मज़े की खबर सुनाई। कल ही वसन्त है।

निर्मलचन्द चिंतित हो गये—हाँ जी, मुझे खबर ही नहीं। अब बताओ, कैसे क्या होगा?

उत्तमा जीता-जागता पंचांग थी। पढ़ी-लिखी तो बिल्कुल न थी; लेकिन गृहस्थी की विद्या में निपुण थी। अनजान बनकर बोली—यह तो बड़ी मुश्किल आ पड़ी। तुमने उपाध्याय को डाँटा नहीं कि पहले क्यों न बता दिया?

'और तुम्हें भी ख्याल न रहा?'

'बिल्कुल नहीं। मैं तो तुम्हारे भरोसे रही।'

'मुझे तो तुम जानती हो, बिल्कुल घोंघा हूँ।'

'अगर इतना कह देने से गला छूट जाता हो, तो आप भी समझ लीजिए कि मैं पगली हूँ।'

'अगर मैंने तुम्हें पगली समझ लिया होता तो मैं घोंघा न रहता। तुम्हीं ने मुझे घोंघा बना दिया। जब मैंने देख लिया कि तुम मेरी मदद के बग़ैर घर का इन्तज़ाम कर सकती हो, तो मैं बेफ़िक्र हो गया। सबसे बड़ी मुश्किल रुपये की है। अभी कल मैंने जीवन-बीमा कराया है और पहली क़िस्त के तीन सौ रुपये भेजे हैं। फ़रनीचर के लिए भी पेशगी रुपये भेजे हैं। यह सारे काम दो-चार महीने टल सकते थे और तुमने मुझसे एक बार भी न कहा कि वसन्त आ गया। मैं कुछ नहीं जानता, तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

उत्तमा ने हँसकर कहा—अच्छा आप घबराइए नहीं। मैं आप की तरह नहीं हूँ कि मुझे वसन्त की खबर भी न हो। आपके बताने की ज़रूरत नहीं है। मैं पहले ही से इन्तज़ाम कर चुकी हूँ। एहसान मानोगे कि नहीं?

निर्मलचन्द की चिन्ता मिट गई। खुश होकर बोले—मैं क्यों एहसान मानने लगा? होली ने तुम्हें बच्चे दिये हैं, तुम उत्सव मनाओ। मैं क्यों एहसान मानूँ? बच्चे भी तो तुम्हीं पर रीझे हुए हैं। मैं बुलाता हूँ कि इनके साथ थोड़ी देर हँसकर मनोरंजन करूँ, तो रोने लगते हैं।

उत्तमा बोली—जी, बिलकुल ठीक! यह क्यों नहीं कहते कि गप-शप से फ़ुरसत नहीं मिलती। बच्चों को खेलाना आसान काम नहीं है। बच्चे भी आदमी पहचानते हैं।

'अड़ियल बैल तो मैं पहले ही था। तुमने और भी काठ का उल्लू बना दिया। उस पर मुझी को ताना देती हो।'

'खुशामद करना कोई तुमसे सीख ले!'

• • •

यकायक धरती पत्ते की तरह काँपने लगी। बड़े ज़ोरों का भूकम्प आ गया। कहाँ दम्पती में विनोद हो रहा था, कहाँ त्राहि-त्राहि मच उठी।

निर्मल ने घबड़ाकर कहा—अब क्या होगा? मालूम होता है, घर गिर पड़ेगा।

उत्तमा ने कहा—लड़कों को लेकर भागो, मैदान में निकल जाओ। भाल कहाँ है? उसे भी देखो, मैं भीतर से कुछ सामान निकालकर आती हूँ।

निर्मलचंद तीनों बच्चों को लेकर चले ही थे, कि आँगन की ज़मीन फट गई और चारो उसकी तह में पहुँच गये। उत्तमा कमरे से हाय मारकर दौड़ी थी, कि उसके ऊपर दीवार गिर पड़ी।

भालचन्द बाहर खेल रहा था; घर गिरते देखकर दौड़ा और नौकरों को पुकारने लगा; पर आध घण्टे तक ऐसा अंधकार छाया हुआ था, कि आदमियों की हाय-हाय के सिवा और कुछ न सुनाई देता था। जब गर्द शांत हुआ और लोग दौड़े, तो मलवे के नीचे उत्तमा दबी हुई बेहोश मिली। निर्मलचन्द और तीनों बच्चे पृथ्वी के उदर में समा गये थे। सोने का घर एक क्षण में बरबाद हो गया।

उत्तमा की बेहोशी दूर हुई, तो उसने अपने को एक झोपड़ी में पाया। भालचन्द पास बैठा रो रहा था।

उत्तमा बोली—पानी ! पानी !

भाल ने आँखें पोंछकर माता के मुँह में पानी डाल दिया और पूछा—कैसा जी है, अम्मा ?

उत्तमा ने उड़ी हुई आँखों से देखा—अच्छी हूँ; मैं कहाँ हूँ भाल ? और तुम्हारे पिताजी और बच्चे कहाँ हैं ?

भाल रोकर बोला—सबको धरती ने अपने पेट में रख लिया, अम्मा ! और क्या बताऊँ, सब भूडोल के पेट में समा गये। ईश्वर सबको निगल गया।

उत्तमा के मुँह से निकला—हाय भगवान् ! तू क्या कहता है !

और फिर बेहोश हो गई।

• • •

आज होली है। जहाँ आज बाजों और आतशबाज़ियों से कान के पर्दे फटते थे, वहाँ आज सन्नाटा है। जहाँ अबीर और गुलाल से ज़मीन लाल हो जाती थी, वहाँ आज रक्त के आँसू बहाये जा रहे हैं। फाग और चौताल की जगह करुण विलाप ने ले ली है।

लेकिन उत्तमा आज भी होली की तैयारी कर रही है। उसने अपना झोंपड़ा गोबर से लीपा है और द्वार पर फटे टाट के टुकड़े बिछा दिये हैं। पकवान की जगह बाटियाँ पकाई हैं और गाँव में घूम-घूमकर लोगों को उत्साहित कर रही है—चलो, सब मिलकर होली की पूजा करें। जो भगवान् के घर गये, वह तो स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं, जो बच गये हैं, वे क्यों दुःख मनाएँ ? आकाश वालों को भी दिखा दो कि हम तुम्हारी इन चोटों की परवाह नहीं करते !

लोग उसकी बातें सुनकर रंज भी करते हैं, धीरज भी धरते हैं; कोई हँसता है, कोई रोता है, और कोई कहता है—इसका सिर फिर गया है। कोई कहता है, भगवान् की लीला है। कोई भगवान् को कोसता है—कैसे भगवान् और कहाँ के भगवान्। न कहीं भगवान् हैं, न ईश्वर। प्रकृति अपना काम करती है, कोई मरे या जिये। जब भगवान् हमारी रक्षा ही नहीं कर सकते, तो हम क्यों उनके नाम को रोएँ? धन भी गया, जन भी गये, अब क्या रखा है, जिसके लिए देवता और भगवान् की पूजा करें।

भालचन्द ने कहा—सच तो है अम्मा! त्योहार तब अच्छा लगता है कि घर भरा-पूरा हो। जब घर-घर मातम हो रहा है, तो होली कौन मनाए।

माता ने बेटे को स्नेह भरे तिरस्कार से देखकर कहा—कैसी बातें करता है भाल? जिसके पास बहुत-सा धन है; वह धन का मूल्य क्या जाने? धन का मूल्य तो वह जानता है जिसके पास केवल एक दिन का भोजन हो। प्राणियों से भरे घर में देवताओं को प्रसन्न रखने की उतनी ज़रूरत नहीं; लेकिन जिसके पास इतना थोड़ा बच रहा हो कि उसके निकल जाने से जीवन का कोई आधार ही न रहे, वह तो उसे प्राणों की तरह संचेगा। जीवन में तुम्हारे सामने क्या है, क्या होने वाला है, यह देखो। क्या हो गया, उसे देखकर क्या करोगे? जो कुछ खो गया; उसका शोक क्या? जो कुछ बच रहा है, उसकी खुशी मनाओ।

दुःखिनी माता ने दिल पर कितना भारी पत्थर रख लिया है,

यह न भाल समझ सका है, और न गाँव वाले ही समझ सके हैं।

• • •

जब आधी रात के समय उत्तमा गाती हुई होलिकादहन करने चली, तो सारा गाँव आप-ही-आप उसके पीछे-पीछे चला। उत्तमा पर सभी को श्रद्धा हो रही थी। शोक को परास्त करके आज वह देवी हो गई थी।

जब ज्वाला ऊँची उठने लगी, तो उत्तमा होली की परिक्रमा करने लगी। सभी स्त्री-पुरुष उसके पीछे-पीछे घूमने लगे। सबके गले भरे हुए हैं; आँखों से आँसू गिर रहे हैं, और सभी होली का स्वागत कर रहे हैं—

'माता हमको दो बरदान, हमारा जिससे हो कल्यान!'

जब होली की ज्वालाएँ ठण्ढी हो गईं, तो उत्तमा ने उसकी एक-एक चुटकी राख उठा-उठाकर प्रत्येक स्त्री-पुरुष के माथे पर लगाई और होली माता से प्रार्थना की—माता, अपने इन बालकों की रक्षा करो। बहुत बलि ले चुकी हो, अब इन्हें अपना जूठन समझकर छोड़ दो। सब तुम्हीं ले लोगी, तो हम किसके लिए जियेंगे? और ले ही जाना है, तो सबको एक साथ ले जाओ। यह क्या कि किसी को ले लेती हो, और किसी को उनके नाम को रोने के लिए छोड़ देती हो।

आज उत्तमा का हृदय विशाल हो गया है। उसमें अपने-पराये का भेद नहीं रह गया है। सभी से अपने ही बच्चों का-सा स्नेह हो गया है।

प्रातःकाल गाँव में होली थी। खँडहरों से और झोंपड़ियों से फाग की ध्वनि निकल रही थी। उत्तमा घर-घर कहती फिरती थी—भाइयो,

और बहनो, खूब गाओ, खूब आनन्द मनाओ। जो गये उनके नाम को रोकर क्या करोगे, जो हैं उनकी जान की खैर मनाओ। उन्हें आशीर्वाद दो।

संध्या समय उत्तमा के झोंपड़े के द्वार पर सारे गाँव के स्त्री-पुरुष एकत्र हुए और इतने प्रेम और उत्साह से होली मनाई कि अच्छे दिनों की होली भी उसके सामने मात हो गई। अपने प्यारों के खो जाने से हृदयों में जो स्थान रिक्त हो गया था, वह इस मंगल-प्रवाह से प्लावित हो गया।

जीवन

सुखिया को मधुवा के घर आये दो साल हुए। सारा गाँव कहता है, ऐसी सुन्दर बहू कभी गाँव में नहीं आई ; रूप के साथ ही उसका स्वभाव भी कुल-देवियों का-सा है। रात-दिन काम में लगी रहती है। मधुवा के पास पाँच बीघा ज़मीन है। उसमें पहले छः महीने को भी खाने को न होता था। उसी में अब साल-के-साल खाता भी है और सौ-पचास का गुड़ साल में बेचकर रुपये भी कर लेता है। अब उस पर किसी का एक पैसा भी क़र्ज़ नहीं है।

मधुवा खाना खाने बैठा, तो सुखिया बोली—आज दूध नहीं है, बछड़ा पी गया, कैसे रोटी खाओगे। घी और गर्म गुड़ दूँ ?

मधुवा बोला—सूखा, तुम तो ऐसी बातें करती हो, जैसे मैं घी-दूध

के बिना खाना नहीं खा सकता। पहले तो भर पेट रोटी भी न मिलती थी। जब से तुम आईं, तब से घी और दूध भी नसीब होने लगा। यह सब तुम्हारे भाग्य से है। मैं तो अपना भाग्य देख चुका हूँ।

सुखिया लज्जा से गड़कर बोली—बे बात की बात क्या करते हो, जो मैं पूछती हूँ, उसका जवाब तो नहीं देते !

मधुवा बोला—अच्छा, जो तुम्हारी इच्छा हो, दो।

सुखिया पति को घी, गुड़ और रोटी बड़े प्रेम से खिलाकर बोली—अब ठीक है। जो मैं दे दिया करूँ, उसे खा लिया करो।

मधुवा बोला—सूखा, तुम-जैसी स्त्री पाकर मैं तो भाग्यशाली हो गया; किन्तु तुमको मैं क्या सुख देता हूँ। मेरे पास धन होता, तो मैं तुम्हें घर से बाहर पाँव न रखने देता !

सुखिया पति का मुँह बन्द करके बोली—मैं तुमसे भी ज़्यादा भाग्यवान हूँ। अपने घर का काम करती हूँ और आराम से रहती हूँ। बैठे रहना अपाहिजों का काम है। आदमी इसीलिए तो जन्म लेता है कि अपने से जो बन पड़े, सब की सेवा करते-करते चला जाय।

• • •

सुखिया के लड़का हुआ, तो मधुवा बड़ा खुश हुआ। लड़के को देखकर बोला—सूखा, बचा बिल्कुल मेरे ही जैसा है। तुम्हें पड़ता तो अच्छा होता।

सुखिया—मुझे तो तुम सबसे ज़्यादा मुन्दर मालूम होते हो।

मधुवा—हाँ, एक बात पूछता हूँ, क्या बिरादरी को भोज न दोगी ?

सुखिया—जैसी तुम्हारी इच्छा।

मधुवा हँस कर बोला—मेरी क्या इच्छा ? लाल-सा बच्चा तो तुम लेकर बैठी हो, मेरी इच्छा कैसी ? ऐसा कहने से छुट्टी नहीं मिलेगी !

पास ही खड़ी मधुवा की बहन रधिया बोली—हाँ भैया, मैं भी एक भैंस और हाथ का कंगन लूँगी। अब नहीं छोड़ूँगी।

मधुवा बोला—राधा, अपनी भाभी से लोगी कि मुझसे ? पहले मुझे दावत तो कर लेने दो, फिर तुम लेना, जो तुम्हारी इच्छा हो !

सुखिया बोली—जीजी, जिसके नाम से लड़का मशहूर हो, उसी से सब मिलना चाहिए।

मधुवा हँस कर रधिया से बोला—राधा, सुन लिया अपनी भाभी का फ़ैसला ? अच्छा भाई, मैं दावत भी दूँगा और सबकी दस्तूरी भी दूँगा ; क्योंकि लड़का मेरे नाम से मशहूर होगा।

● ● ●

आज मधुवा के घर में भोज है। हलवाई आँगन में पूरी-मिठाई बना रहा है, मधुवा सबके खाने का इन्तज़ाम कर रहा है। और गाँव की स्त्रियाँ गाना गा रही हैं। गाँव के पुरुष दही, चटनी ठीक कर रहे हैं। दरवाज़े पर बाजा बज रहा है।

जब पत्तल पड़ गई और लोग आकर खाने बैठ गये, तो मधुवा पाल से आम निकालने गया ; मगर टोपे में हाथ डाला ही था कि उसकी उँगली साँप के मुँह में पड़ गई। वह उसी तरह साँप को उठाकर लाया और सब के सामने उसे पटक कर खुद भी बेहोश हो कर गिर पड़ा। सब लोग खाना छोड़कर उठ गये और कुहराम मच गया। भीतर से सुखिया भी आकर रोती हुई बोली—भगवान् ! क्या यही न्याय

है कि माँस का लोथड़ा देकर मेरा हीरा छीन लिया? यही करना था, तो इसे दिया क्यों? मैंने कब माँगा था? लोग कहते हैं, तुम बड़े दयालु हो, तो क्या कुछ माया का खेल दिखाना चाहते हो?

रधिया चिढ़कर बोली—भगवान् दयालु है कि पत्थर, जिसका काम दुःख ही देना है।

● ● ●

मधुवा मर गया। पहले तो गाँव के आदमी सोचते, सुखिया दूसरा घर करने का विचार कर रही होगी; इसी से इसको रंज नहीं है। स्त्रियाँ कहतीं—क्यों रोये, कौन मधुवा बड़ा सुन्दर था! सुखिया की क़िस्मत खुल गई। अब उसके पाँच सौ गाहक हैं; लेकिन जब सुखिया के कानों में यह बातें पड़ जातीं, तो कहती—मुझे क्या करना है घर करके? चार साल में तो मेरा लड़का सयाना हुआ जाता है। सुखिया को काम की धुन रहती थी। कौन क्या कहता है, इसकी चिन्ता न थी। दुनिया की बातों में पड़ना वह व्यर्थ समझती थी। उसको यह कहावत याद थी—'आँधी आवे बैठ गँवावे।' उसकी खेती-बारी का काम उसी तरह चला जाता था। जीवन से उसका मोह अब और भी बढ़ गया था। जो भार पहले दो कन्धों पर था, अब वह उसे अकेली ही उठाये हुए थी। नित्य नई-नई बातें आती रहती थीं। बच्चे का मूड़न हुआ। फिर नया घर बना, तब कल्लू की पढ़ाई की चिन्ता हुई। यहाँ तक कि कल्लू के विवाह का दिन भी आ गया। सुखिया के जीवन में वही उत्साह, वही आनंद था।

● ● ●

सुखिया के जिस दिन पोता पैदा हुआ, उसी दिन बहू मर गई।

एक महीने का भी लड़का नहीं हुआ था कि कलुआ भी मर गया। सुखिया उसी शान्ति के साथ पोते को पालने लगी।

सुखिया का दुःख देखकर गाँव वाले कहते—क्या सूखा तुम्हारी क़िस्मत में दुःख ही भोगना बदा है?

तब सुखिया कहती—अपना क्या बस है। अब तो यही मनाती हूं कि भगवान् ने इसे दिया है तो जिला देवे।

फिर उसका पहले जैसा काम चलने लगा।

अब स्त्रियों को भी सुखिया से श्रद्धा हो गई। जब कोई पुरुष सुखिया को कुछ कहता तो सब कहतीं—भाग को कोई नहीं जानता। क्या उसके बेटा नहीं था कि पति नहीं था? सब ईश्वर का खेल है। न कोई किसी का बेटा है, न पति। सुखिया को कोई ज़रूरत होती, तो गाँव-का-गाँव उसकी मदद करने को तैयार हो जाता। इधर कई महीने से रधिया भी स्वार्थ-वश सुखिया के साथ रहने लगी थी। वह कभी-कभी अपने लड़के को बुला कर सुखिया की चोरी से अनाज दे देती थी। एक दिन सुखिया ने देख लिया। बोली—बहन, घर तो तुम्हारा ही है, क्या मैं मरने लगूंगी, तो साथ ले जाऊँगी?

रधिया बोली—क्या मैं घर में आग लगा रही हूँ? मैं भी रात-दिन छाती फाड़ कर काम करती हूँ, मुफ़्त में नहीं खाती। न अपने स्वार्थ से पड़ी हूँ। मैं तो सोचती हूँ कि मेरे भाई का घर है और तुम भी अकेली हो; इसलिए पड़ी हूँ, नहीं मुझे क्या करना है। मैं रहती हूँ, तो तुम अपने मन का नहीं करने पातीं, इसी से खुचड़ निकालती हो।

सुखिया बोली—क्या दीदी, तुम्हें अब भी मुझपर दया नहीं आती?

में ऐसा कौन-सा सुख पाती हूँ ? मैं तो सोचती हूँ, उस जनम में जो पाप किये हैं उनको रो-रोकर क्यों काटूँ, हँस-हँस कर क्यों न काट दूँ, जिसमें उस जन्म को फिर बाक़ी न रहे ? फिर आदमी रोता तब है, जब कोई रोना देखने वाला हो। जब ईश्वर की यही मर्ज़ी है कि कोई मेरा रोना देखने वाला ही न रहे, तो क्यों रोऊँ। मैं भी देखती हूँ कि भगवान् कहाँ तक मुझको रुलाते हैं। मैं रोऊँगी नहीं।

रधिया जल गई और बोली—सूखा, रोते हैं वही लोग जिनको भगवान् ने दिल दिया है। विलासी आदमी नहीं रोते। तुम्हें तो पड़ी है कि खूब धन जमा करो, तुम्हें कहाँ रोने की फ़ुरसत है।

सुखिया ने जवाब न दिया। घास की खाँची ले कर चली गई।

गर्मियों में गाँव में कॉलरा फैला, तो सबसे पहले सुखिया का पोता रघुवा चल बसा। गाँव में हाहाकार मच गया। सारा गाँव जमा होकर सुखिया को समझाने आया; मगर सुखिया उलटा उन्हें समझाने लगी—भगवान् जो कुछ करते हैं, हमारे भले के लिए करते हैं। उनका मर्म कौन जानता है ? रघुवा को उन्होंने दिया था। उन्होंने उसे बुला लिया। १४ साल तक मैंने उसे पाला-पोसा, प्यार किया। यह उन्हीं की दया तो थी। वह अपनी चीज़ उठा ले गये, तो उठा ले जायँ। मेरे लिए जितने बालक हैं, सभी रघुवा हैं। अब मैं सभी को उसी तरह देखती हूँ, जैसे अपने रघुवा को देखती थी। तुम मेरे लिए गाँव के बाहर एक कुटिया बना दो। अब मैं उसी में रहूँगी। यह घर अब मैं राधा बहन को सौंपती हूँ।

सुखिया की करुणा-भरी बातें सुनकर लोगों के हृदय फटे जाते थे।

कितनी अभागिनी है। फिर भी कितना धैर्य है, कितनी भक्ति है। बड़े-बड़े ज्ञानियों की आँखों से ऐसे अवसर पर आँसू निकल आते हैं; पर इसने तो जैसे दुःख को जीत लिया। कई आदमी तो रोने लगे।

गाँव के चौधरी ने आँखें पोछते हुए कहा—भाभी, तुम्हारे लिए हमारा घर तैयार है, कुटिया में क्यों रहोगी। हम सब तुम्हारे बालक हैं। हमें आशीर्वाद दो। तुम्हें किसी बात की तकलीफ़ न होने पाएगी।

रखुवा के संस्कार के बाद सुखिया ने फिर लोगों से अपनी कुटिया बनाने को कहा। दूसरे दिन उसकी कुटिया तैयार हो गई। फूस की झोपड़ी बनने में क्या देर लगती।

लेकिन रधिया को सुखिया का जाना बुरा लग रहा था। वह समझती थी—सुखिया हमें इस घर में देख नहीं सकती; इसलिए यह पाखण्ड कर रही है कि हम लोग चले जायँ, तो आकर आराम से रहे।

जब सुखिया जाने लगी, तो ताना देकर बोली—सूखा, हमारा रहना तुम्हें अच्छा नहीं लगता, तो अपना घर लो। साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती हो कि मुझे तेरा रहना अच्छा नहीं लगता? मैं द खुद़ी अपने घर चली जाऊँगी।

सुखिया ने तो कोई जवाब न दिया; पर चौधरी ने डाटकर कहा—रधिया, तू आदमी है कि शैतान जो जले पर नमक छिड़कती है! तुझे भगवान् का भी डर नहीं है! मुँह से ऐसी बातें निकालते तुझे लाज भी नहीं आती!

रधिया हाथ मटकाकर बोली—यह सब नखरा है चौधरी भैया, कि

मैं घर छोड़ कर निकल जाऊँगी। यह मुझे निकालने का बहाना है। मैं ऐसी भोली नहीं हूँ।

लोगों ने उसे बहुत धिक्कारा, तब शान्त हुई, और उसी वक्त सुखिया घर से चली गई। घर का एक तिनका भी न लिया।

• • •

जब से सुखिया झोपड़ी में रहने लगी है, तब से उसके पगली होने में जो कसर थी, वह भी पूरी हो गई है। अब उसका काम है—झाड़ियों और खण्डहरों में घूमना। क्या ढूँढ़ती है, इसकी किसी को खबर नहीं। किसी को ध्यान आ गया और कुछ खाने को दे दिया, तो खा लेती है और हरदम हँसती रहती है। साड़ी तार-तार हो गई, उसका कोई ग़म नहीं। कोई क्या कहता है, इसकी फ़िकर नहीं। जिसका बच्चा पा जाती है, उसको गोद में लेकर खेलाती है, प्यार करती है। जब कोई बच्चा या स्त्री बीमार होती है, तो सुखिया मारने से भी नहीं हटती। उसका पाखाना साफ़ करती है, रात-दिन उसके पास बैठी रहती है। जो काम सुन पाती है, खुद करने को दौड़ती है।

बहुत-से स्त्री पुरुषों को उसका आना अच्छा नहीं लगता। कहते हैं—जहाँ पगली जाय, वहाँ ईश्वर ही कुशल करे; मगर लड़के पगली को अपने मनोरंजन की चीज़ समझते हैं। कभी-कभी पगली बेर तोड़ लाती है और बच्चों को खिलाती है, खुद भी खाती है।

हाँ, जब घरवाले देख लेते हैं, तब बच्चों से पगली की दी हुई चीज़ें फेंकवा देते हैं। तब पगली कहती है—बेर मीठे हैं, खा लेने दो; मैं इन्हीं के लिए तो लाई हूँ। बच्चों को छोटी-मोटी बीमारी

होती है, तो पगली उन्हें चुपके से अपनी झोपड़ी में ले जाकर दवा खिलाकर अच्छा कर देती है, और मना कर देती है कि अपने घर में न कहना। बच्चे खुद ही अपने घरवालों से डर के मारे नहीं कहते ; लेकिन जब अच्छे हो जाते हैं, तब बात खुलती है कि पगली ने दवा खिलाई थी।

किन्तु जब गाँव में पगली की औषधियों की धूम मच गई, तब लोगों को खयाल हुआ, कौन जाने किसी देवी-देवता की छाया आ गई हो, क्योंकि इसी वेष में देवी- देवता रहते हैं।

एक दफ़े गाँव में प्लेग की बीमारी आई। लोग गाँव छोड़कर बाहर निकल गये। वहाँ भी बीमारी से पीछा न छूटा। कई आदमी मर गये। तब भी पगली सब की सेवा करती। जंगलों से जड़ी-बूटी ढूँढ़कर लाती और लोगों को खिलाती। पाखाना, पेशाब साफ़ करती। कई आदमी उसकी दवा से अच्छे भी हो गये। तब से पगली से लोगों का प्रेम हो गया। लोग कहते—कोई बड़ी आत्मा है। पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा ; इसीलिए इसने जन्म लिया है। यह पगली नहीं है, देवी है। जब तक घर में सेवा करने का अवसर मिला, घर में सेवा करती रही ; जब घर से छुट्टी पा गई, तब दूसरों की सेवा करने लगी। फिर कुछ लोग उसको दुत्कारते हैं। पगली को इसकी भी परवाह नहीं। सब की दुत्कार हँसकर सुन लेती है। पर, सेवा करना नहीं छोड़ती।

एक युवक बोला—घरवाले मर जाँय, तो बहुत-से स्त्री-पुरुष दूसरों की सेवा करने के लिए निकल आयें।

बूढ़े चौधरी ने फटकारकर कहा—चुप रहो, कहने लाज भी नहीं

आती! दूसरों की सेवा करना हँसी-खेल नहीं है। यह भाव उसी में आते हैं, जिस पर भगवान् की कृपा होती है। सब में नहीं आते। हमारे घर में एक विधवा होती है, तो हम उससे ऊब जाते हैं। मनाते हैं, कब मरेगी। पगली को देख कर तो इच्छा होती है कि इसकी पूजा करें। सच पूछो, तो जीवन का उद्देश्य उसी ने समझा है। दुनियाँ को वह कर्म करने की जगह समझती है, भोग करने की जगह नहीं।

अभी इन दोनों में बातें हो ही रही थीं कि गाँव में बड़े ज़ोरों से शोर होने लगा—दौड़ो आग लगी है, मेरा बच्चा जल रहा है! युवक और चौधरी दोनों दौड़े।

• • •

वहाँ जाकर देखते हैं तो पगली के घर में आग लगी हुई है, जिसमें रधिया अपने बच्चों के साथ रहती थी। आग अपना विशाल मुँह खोले मानो सारे गाँव को अपने उदर में रख कर ही शान्त होगी। किसी की कुछ अक़्ल काम न करती थी और रधिया हाय-हाय कर रही थी कि मेरा बच्चा जला जा रहा है। कोई दौड़ो। आग में घुसने का साहस कौन करता? सहसा न जाने किधर से पगली आ गई और जैसे आते-ही-आते उसे सब कुछ मालूम हो गया। वह तीर की तरह आग के बीच में घुसी और एक क्षण में बच्चे को अपने पेट में दबाकर निकल आई। बच्चे को कहीं आँच भी नहीं आई। पगली का सारा शरीर जल गया था। बच्चे को ज़मीन पर लिटाकर वह बेहोश हो गई।

पगली की लोगों ने बहुत दवा-दारू की; किन्तु कोई लाभ न हुआ। जब उसको होश आया तब बोली—बचा कैसा है? सब ने एक

स्वर से कहा—देवी, तुम्हारे आशीर्वाद से उसको आँच भी नहीं लगी। अब तुम्हारा जी कैसा है? तुम्हें कैसे अच्छा कर लें?

पगली हँसकर बोली—मुझे बड़ी ख़ुशी है कि बचा अच्छा है। अब मेरे चलने की बेला हो गई है।

रधिया रोकर सुखिया के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—देवी, तुम तो हँसती हुई जाती हो, मुझको अभी बहुत दिन रोना है।

सुखिया बोली—दीदी, तुम मेरी बड़ी हो, तुमने कोई पाप नहीं किया। दुःख में सभी कहते हैं। मेरे आते ही तुम्हारा भाई मर गया, भतीजा मर गया, नाती मर गया, तुम रोती थीं, मैं शान्त थी। इसी पर तुम्हें क्रोध आता था और तुम मेरे ऊपर सन्देह करती थीं। यह मनुष्य की प्रकृति है, तुम्हारा कोई दोष नहीं। मुझे आशीर्वाद दो! मैं क्यों हँसती हूँ, मैं खुद नहीं जानती : पर चाहती हूँ कि इसी तरह हँसती जली जाऊँ।

इसके बाद सुखिया ने पानी माँगा और पानी पीते ही उसकी आँखें बन्द हो गईं। हाँ, उसके मुख पर आनन्द की ज्योति-सी चमक रही थी।

विधवा

सुखिया का ब्याह बचपन में ही हो गया था ; लेकिन गौने के पहले ही उसके बाल-पति की मृत्यु हो गई। पहले सुखिया को इसका कुछ खयाल न था ; लेकिन जब युवती हुई और गाँव-घर की बातें सुनने लगी, तब उसे ज्ञात हुआ वह विधवा है और उसके लिए संसार के सभी सुख वर्जित हैं। उसकी माँ उसे रँगी हुई साड़ी भी नहीं पहनने देती, और अगर कभी वह अपनी ज़िद से पहन लेती है, तो गाँव की स्त्रियाँ उस पर कटाक्ष करती हैं। इससे सुखिया को अपने जीवन से निराशा हो गई है। अपने मन को चारों ओर से बटोर कर वह घर के काम-धन्धे में लगी रहती है, सुखों की कल्पना भी उसके मन में नहीं आती। उसके मन में एक प्रकार का विद्रोह हो उठा है—अगर संसार के सुख मेरे लिए नहीं हैं, तो मैं उनकी ओर आँख उठाकर देखूँगी भी नहीं। विधाता

को भी मालूम हो जाय कि सुखिया रोनेवाली जीव नहीं है, जड़ है जिसे सुख-दुःख व्यापता ही नहीं।

इसी गाँव में एक बड़े ज़मींदार कुँवर ब्रजेशचन्द्र रहते हैं। शिक्षित हैं, सभ्य हैं और देश भक्त हैं। सत्याग्रह आन्दोलन में कई बार जेल हो आये हैं। गाँव में अपनी सज्जनता के लिए मशहूर हैं। उन्होंने एक कन्या-पाठशाला खोल रखी है और उसे अपने खर्च से चलाते हैं। सुखिया कभी-कभी उनकी पत्नी ललिता के पास आती-जाती है। ललिता का कोमल हृदय इस विधवा का निष्फल और निराश जीवन देखकर रो उठता है और वह बार-बार चाहती है, उसकी किसी-न किसी रूप में कुछ सहायता करे; मगर सुखिया का गर्वीला स्वभाव देखकर कुछ कहने का साहस नहीं कर पाती।

एक दिन जब कुँवर साहब घर में आये, तो उसने उनसे कहा—तुम्हारी पाटशाली में कोई काम निकल सके, तो सूखा के लिए क्यों नहीं निकालते? उसका गुज़र भी हो जायगा। और काम में कुछ जी भी बहल जायगा। बड़ी अच्छी है बिचारी।

कुँवर साहब ने ऊपरी मन से कहा—वहाँ लड़कियों को पढ़ाने के सिवा दूसरा कौन काम है। सूखा लड़कियों को पढ़ा सकेगी?

'वह अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ती है, तुम कहते हो वह लड़कियों को पढ़ा सकेगी? ऊँचा दरजा न दो, कोई छोटा दरजा ही दे दो।'

'देखो, सोचूँगा।'

ललिता ने पति के गले में बाँहें डाल दीं और बोली—सोचना क्या है। उसे कोई काम देना होगा। मैं ज़बान दे चुकी हूँ।

कुँवर साहब कुछ चिंतित होकर बोले—तुमने नाहक़ ज़बान दी। पाठशाला कुछ मेरे घर की चीज़ तो नहीं है कि जिसे चाहूँ रख लूँ। कमेटी के सामने यह प्रस्ताव रखूँगा, और वह स्वीकार कर लेगी, तो कोई जगह दे दूँगा ; मगर जहाँ तक मैं समझता हूँ, कमेटी वाले स्वीकार न करेंगे और धनाभाव के कारण मैं भी ज़ोर न दे सकूँगा।

ललिता का मुँह लटक गया। वह अपने घर की रानी थी। जो चाहती थी, करती थी। कोई उसके बीच में दखल देनेवाला न था। कमेटी क्या बला है, इसका उसे कोई तजरबा न था। उसने समझा, यह महाशय केवल टालने के लिए बहाना कर रहे हैं। मर्दों का दिल कितना कठोर होता है।

कुँअर साहब ने देखा, यहाँ कमेटी की आड़ में छिपने से काम न चलेगा। ललिता की अप्रसन्नता कमेटी की अस्वीकृति से कहीं भयंकर थी।

बोले—तुमने सचमुच उसे वचन दे दिया है ?

'और क्या तुमसे झूठ बोल रही हूँ ? वह तो राज़ी ही न होती थी। मेरे बहुत कहने-सुनने से राज़ी हुई।'

'अच्छा भाई, मैं उसे एक जगह दे दूँगा। अब खुश हुई ?'

'तुम्हारा मुझे विश्वास नहीं है। अपने मन से चाहे लाख उड़ा दो ; लेकिन मैं जो बात कहूँ, वह तुम क्यों मानने लगे। आखिर पुरुष हो कि नहीं !'

'अरे भाई, कहता तो हूँ उसे जगह दे दूँगा।'

'२५) से कम में उसका गुज़र न होगा।'

'मैं ३०) दे दूँगा। कह दो कल पाठशाले के दफ़्तर में मुझसे मिले।'

बाहर से छोटा लड़का प्रभात दौड़ता हुआ आया और पिता की गोद में डट गया। फिर उसकी गरदन पर सवारी गाँठी और बोला—तल धोले, तल !

कुँअर साहब ने पूछा—अच्छा बताओ, किस के लड़के हो ?

प्रभात नटखटी करता हुआ बोला—अम्मा का।

'तो जल्दी उतरो मेरी गरदन से !'

'नहीं-नहीं तुम्हारा !'

ललिता बोली—अच्छा तो उन्हीं के पास रहना, उन्हीं के पास सोना, मैं नहीं सुलाऊँगी।

प्रभात नीचे उतरकर अपनी माँ की गोद में आ बैठा और बोला—तुमाला भी, इनका भी !

• • •

सुखिया पाठशाला में खूब मन लगाकर पढ़ाती है। कन्याएँ उसे बहुत प्यार करती हैं। उसे अब मालूम हो रहा है, मेरा जीवन भी किसी के काम आ सकता है।

अब सुखिया, सुखिया नहीं है। सुखदा देवी हो गई है। साड़ी और जम्पर से लैस रहती है, बालों को नये-नये ढंग से बनाती है। और माथे पर लाल चन्दन की बिन्दी लगाती है। क़लाइयों में अब रंगीन चूड़ियाँ भी हैं।

एक तो वह योंही सुन्दर थी, उस पर बनाव-सिंगार ने रूप को और चमका दिया।

एक दिन सुखदा बन-ठन कर गई, तो ललिता ने मुसकिराकर

कहा—मैं डरती हूँ, तुम्हें किसी पुरुष की नज़र न लग जाय।

सुखदा लजाती हुई बोली—तुम्हारे पास कोई मंतर हो, तो मुझे भी बता दो।

ललिता हँसी—मुझे वह मंतर आता, तो तुम्हारे दादा की नज़र क्यों लगती!

सुखदा बोली—दादा पर तो तुमने मंतर फूँक दिया है, वह तुम्हें क्या नज़र लगायेंगे?

ललिता उसकी गोद में सिर रखकर लेट गई और बोली—नहीं सुखदा, मैंने उन पर मंतर नहीं फूँका, उन्हीं ने मुझ पर वशीकरण डाल दिया है। ऐसे भोले-भाले हैं कि मैं तुम से क्या कहूँ। शिवजी का अवतार समझ लो। मुझे यह पाँचवाँ महीना है, न खाना खाया जाय, न पानी हज़म हो और वह जब घर में आते हैं, तो घबड़ाये हुए, जैसे मैं बीमार हूँ। जब प्रभात का प्रसव हुआ, तो वह अपने कमरे में बैठे रो रहे थे। बड़ा भोला स्वभाव है। मैंने पूर्व जन्म में कोई बड़ा तप किया था बीबी, कि यह मुझे मिले। लेकिन, भगवान् ने स्त्रियों के साथ यह बड़ा अन्याय किया है। मैं तो अब कान पकड़ती हूँ।

सुखदा ने ठट्ठा मारा—अभी ऐसा कहती हो, जब लाल-सा बालक लेकर बैठोगी, तब न कहोगी। मैं अबकी कोई निशानी लूँगी, याद रखना।

इस तरह दोनों में घनिष्ठता बढ़ती जाती थी। ललिता उसे बार-बार आने का आग्रह करती और सुखदा भी जब अवसर पाती, ज़रूर जा पहुँचती।

एक दिन सुखदा की माँ ने रोष से कहा—तू उनके घर क्यों दौड़-दौड़कर जाती है ? जब देखो, वहीं बैठी है। मैं अकेली कौन-कौन काम करूँ ?

सुखदा ने बड़ी नम्रता से कहा—क्या करूँ अम्मा, भाभी मुझे इतना प्यार करती हैं कि वहाँ से आने का जी ही नहीं होता। देवियों का-सा स्वभाव है।

माँ जानती है, ललिता ही की कृपा से आराम से दिन कट रहे हैं। क्या कहती। उल्टे और ललिता को आशीश देने लगी—भगवान् उन्हें दूधों-पूतों से सुखी रखे बेटी, उन्होंने दया न की होती तो हम भीख माँगते होते; लेकिन तेरा बार-बार उनके घर जाना अच्छा नहीं लगता। योंही कुछ लोग जलते हैं। इस तरह तो उनको कानाफूसी करने का अवसर मिल जाता है।

• • •

आधी रात का सन्नाटा छाया हुआ है। सारा गाँव सोया हुआ है; पर सुखदा जाग रही है। नींद को भाँति-भाँति के प्रलोभन देती है; पर वह नहीं आती।

इधर महीनों से उसका चित्त चंचल हो गया है और बहुधा उसकी रातें जागते ही कटती हैं; लेकिन आज तो किसी तरह नींद नहीं आती। वही प्रश्न बार-बार मन में उठता है, भगवान् ने मुझे क्यों बनाया ? मनुष्य क्यों जन्म लेता है ? क्या इसीलिए कि किसी तरह पेट पाले और एक दिन मर जाय ? जिस जीवन में कहीं आशा नहीं, कहीं प्रेम नहीं, कहीं आनन्द नहीं, क्या वह जीवन है ? ललिता को देखो, कितनी शांति

से और सुख के साथ जीवन व्यतीत करती है ! पति भौंरे की भाँति मँडराता रहता है, बच्चे हार की तरह गले से लिपटे रहते हैं। उसने अपने सूने कमरे की ओर आँखें उठाईं ! बुढ़िया माँ खाट पर पड़ी ख़र्राटे ले रही थी। उसका जी व्याकुल हो गया। कहाँ भाग जाय ? संसार में उसके लिए कहीं प्रेम नहीं है, कहीं आश्रय नहीं है। ललिता न मेरी जैसी सुन्दर है, न मेरा जैसा रंग। उसने एक जलती हुई साँस खींची और लैम्प जलाकर आईने में अपना रूप देखने लगी। उसकी आँखें सजल हो गईं। न जाने क्या सोचकर रोने लगी और रोते-रोते सो गई।

• • •

कुँअर साहब के घर लड़का पैदा हुआ। सुखदा ने स्कूल से छुट्टी ले ली है और रात-दिन उन्हीं के घर रहती है। बच्चों की देख-भाल, ज़च्चा की देख-भाल, कुँअर साहब को खिलाना-पिलाना, पान देना, इसी में लगी रहती है।

ललिता कहती है—बीबी, आजकल तुम्हें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

सुखदा कहती है—मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं होता। आप कहती हैं—बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। मैं इसे अपना सौभाग्य समझती हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। आजकल मुझे जीवन में जो आनन्द मिल रहा है, वह कभी न मिला था।

कुँअर साहब अब कभी-कभी रात को भी पान माँगते। सुखदा के बनाये हुए बीड़े बड़े ही मज़ेदार होते हैं। सुखदा हँस-हँसकर उनका

बिछावन बिछाती है, पान खिलाती है, फूलों के गुलदस्ते बनाकर उनकी मेज़ पर रखती है। उसके अंगों में इतनी फुर्ती कभी न थी। ललिता उन दोनों में भाई-बहन का-सा स्नेह देखकर भीतर-ही-भीतर प्रसन्न होती है।

बरही के दिन जब भोज और जलसा समाप्त हो गया, तो ललिता ने सुखदा को गले लगा लिया और अपने गले का हार उतारकर उसके गले में डाल दिया और बोली—इसे स्वीकार करो, बीबी !

सुखदा ने लजाते हुए कहा—तुम तो मुझे लज्जित करती हो भाभी. मैं यह नहीं चाहती, केवल तुम्हारा स्नेह चाहती हूँ।

ललिता बोली—यह तुम्हारा हक़ है बीबी, मेरे दूसरी कोई ननद थोड़े ही बैठी है। तुमने जिस तरह मेरा घर सँभाला, इसके लिए मरते दम तक तुम्हारा एहसान मानूँगी।

सुखदा चली गई, तो ललिता सोचने लगी—कितनी भोली है ! ज़रा हँसकर बोल देती हूँ तो निहाल हो जाती है। बिचारी के आदमी होता, तो काहे को अनाथ होती। स्त्रियों का तो पति ही से सब-कुछ है। एक प्राणी बिना सब कुछ मिट्टी है।

पहले ललिता ही सुखदा को मानती-जानती थी। अब कुँअर साहब भी उसका आदर करते हैं। सुखदा के गुन-सहूर की बड़ाई करते नहीं थकते।

ललिता ने सुखदा की उनसे चर्चा करते हुए कहा—मैंने तो आज उसे अपना हार दे दिया। गद्गद् हो गई। अपनी सगी ननद भी होती, तो इससे ज़्यादा और क्या करती ? मैंने सोचा, मैं ही क्यों कहने को रखूँ ?

कुँअर साहब प्रसन्न होकर बोले—बहुत अच्छा किया तुमने। मैं तो खुद उसके लिए एक रेशमी साड़ी लानेवाला था। अच्छा फिर देखूँगा।

'फिर क्या देखना है ? सोचा है तो आज लाकर दे दो।'

'अच्छी बात है।'

• • •

आजकल घर-घर यही चर्चा होती है कि सुखदा गर्भवती है। जहाँ दो-चार स्त्रियाँ बैठती हैं, इसी बात की आलोचना होती है। इधर सुखदा ने पाठशाले से छुट्टी भी ले ली है। इससे यह संदेह और भी दृढ़ होता जाता है।

एक दिन कई औरतें गुट बाँधकर सुखदा के घर गईं और उसकी माँ से बोलीं—कैसी तबीयत है सुखिया की ?

माँ ने दीन भाव से कहा—कई दिन से पेट में दर्द है और बुखार भी हो जाता है।

एक देवी ने हँसकर कहा—क्यों छिपाती हो चाची, उसे गर्भ है ! लो, अब मज़े से नाती खेलाओ।

माँ आँखों में आँसू भरकर बोली—क्यों ऐसी बातें करती हो ! सुखिया ही अकेले थोड़े विधवा हुई है। कौन जाने किसके सिर कब यह विपत्ति आये।

एक दूसरी महिला ने आँखों से सान मारकर कहा—इसकी बातों पर ध्यान मत दो काकी, यह तो पागल है।

इस तरह वृद्धा को रुलाकर जब सब देवियाँ चली गईं, तो सुखदा

अन्दर से रोती हुई निकली और माता के चरणों में गिरकर बोली—अम्मा, तुम मुझ अभागिनी को मार डालो। तुम जैसी देवी की कन्या होने के योग्य मैं नहीं हूँ। मैं पापिनी हूँ, दुराचारिणी हूँ, मैंने तुम्हारे नाम को कलंकित किया है। तुम्हें कहीं मुँह दिखलाने योग्य नहीं रखा। तुमने मुझे इतने लाड़-प्यार से पाला और आज मेरे कारण तुम्हें यह संताप हो रहा है। अब यह ज्वाला मुझसे नहीं सही जाती, अम्मा! जैसे एक दिन तुमने दया करके मुझे अपने स्तन से पाला, उसी तरह दया करके अब इस जीवन का अन्त कर दो। प्राण-दण्ड के सिवा मेरा उद्धार और किसी तरह न होगा अम्मा! मृत्यु ही अब मेरी रक्षा कर सकती है। मुझे किसी तरह इस अग्नि-कुण्ड से निकालो, माता!

यह कहते-कहते वह अचेत हो गई।

माता सुखदा को गोद में लिए आँसू बहाती थी और खूब ज़ोर से उसे हृदय से चिमटाये हुए थी, जैसे कोई सचमुच सुखदा के प्राण लेने के लिए खड़ा हो।

आकाश में बादल घिर आये थे और छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही थीं, जैसे वे भी वृद्धा के साथ रोती हों।

सुखदा फिर होश में आकर बोली—तुम क्यों रोती हो अम्मा, मेरी प्यारी अम्मा! मुझ पापिनी को क्यों नहीं थोड़ा-सा विष दे देतीं? हाय! तुमने मुझे जन्म होते ही क्यों न मार डाला, नहीं तुम्हें आज समाज के सामने क्यों सिर नीचा करना पड़ता? नहीं, मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूँ, मैं तुम्हारी कोख से नहीं जन्मी, मैं तुम्हारी वैरिन हूँ। मैं तुम्हारी गोद के लायक नहीं रही अम्मा!

यह कहती हुई वह माता की गोद से उठकर खड़ी हो गई।

माता रोती हुई बोली—यह किस पापी का पाप है बेटी?

मुखियां ने उत्तर न दिया।

माता ने फिर पूछा—बता दे, यह किस पापी का कर्म है। मैं उसके पास जाऊँगी और उसके चरणों पर गिरकर कहूँगी, तूने उसकी बाँह पकड़ी है, तो अब उसका निबाह कर!

सुखिया ने फिर भी कोई जवाब न दिया। मूर्ति की तरह खड़ी रही, जैसे किसी ने उसकी वाणी हर ली हो।

● ● ●

आज गाँव में पंचायत होने वाली है। उसमें सुखिया का मुक़दमा पेश होगा। उसने बिरादरी को कलंकित किया है। उसे दण्ड दिया जायगा और जिसने यह पाप किया है, उसे भी दण्ड मिलेगा। सबके मुँह में एक ही बात है—देखें, यह राँड़ आज किसके सिर आफ़त डालती है और सबसे ज़्यादा व्यग्र हैं, गाँव की महिलाएँ, जिन्हें घर के काम-धन्धों की भी सुधि नहीं है। उनमें जो समझदार हैं, वह तो समाज को कोस कर अपना चित्त शान्त कर रही हैं, जो अपढ़ हैं, वह सारा अपराध सुखदा ही के गले मढ़ रही हैं।

एक देवी ने सर्वज्ञता के भाव से कहा—हम को तो तभी शंका हो गई थी, जब हमने इसका बनाव-सिंगार देखा। जब कोई विधवा सज-कर निकले, तो समझ लो यह टिकने वाली नहीं है।

दूसरी बोली—मेरी तो यही समझ में नहीं आता कि जब राँड़ को मालूम हो गया कि मैं बिना खसम के नहीं रह सकती, तो क्यों

नहीं किसी को पकड़कर बैठ गई। यह छीछालेदर क्यों कराया ?

तीसरी ने दिल के फफोले फोड़े—यह सब पुरुषों का अन्याय है। पहले तो बिचारी भोली औरतों को बातें बना-बनाकर फँसाते हैं, फिर उन्हें गली-गली भीख माँगने के लिए छोड़ देते हैं।

चौथी बोली—यह सारा पाप कुँअर साहब की दुलहिन को लगेगा। वह इसे न पाठशाला में नौकर रखवातीं, न इसे शौक-सिंगार की सूझती, न यह खराबी होती। इसीलिए विधवाओं को यह सब चीज़ें मना कर दी गई हैं; पर आजकल की विधवाएँ तो सधवाओं के भी कान काटती हैं।

एक देवी बोलीं—तुम यह बहुत ठीक कहती हो, दीदी। मेरी जेठानी को देखो। बिना तेल और पान के रहा नहीं जाता। सारे घर के नाक में दम किये रहती हैं।

एक खूब मोटी स्त्री ने सारी दुनिया को समेट लिया। बोली—घर-घर यही हाल है बहन! घर में एक विधवा हो गई, तो सारे घर को बिधवा बना डालती है। सबकी छाती पर मूँग दला करती है। उस घर में रहना, तो नरक से भी दुःखदायी है। और जो कहीं युवती और रूपवती हुई, तब तो पूरी आफ़त है। अगर घर की और स्त्रियाँ सीधी-सादी हुईं, तो समझ लो, उनके प्रान सूली पर टँगे हैं।

एक और महिला ने जलकर कहा—अभी उस बहन ने कहा कि यह पुरुषों का अन्याय है, जो स्त्रियों को खराब करके आप अलग हो जाते हैं। मैं पूछती हूँ—क्या पुरुष पागल है, जो ऐसी स्त्रियों के साथ जलने-मरने को तैयार हो जाय ? क्या वह इतना भी नहीं समझता कि

जो स्त्री अपने पति की न हुई, वह उसकी क्या होगी। आये दिन तो यही लीला होती है, फिर भी स्त्रियों की आँखें क्यों नहीं खुलतीं ? पहले तो सधवाओं से बाज़ी लगाती हैं, और जब पाप का फल मिल जाता है, तो अपने कर्मों को रोती हैं। सुना है, आजकल गर्भ रोकने का कोई उपाय निकला है। अब इन विधवाओं की चाँदी है। अब चाहे कितना कुकर्म करें, क्या डर ! पढ़ी-लिखी औरतों में इसका बड़ा प्रचार हो गया है। मज़े से भोग-विलास करती हैं और सबके सामने ऐसी बातें करती हैं, जैसे सीता और पार्वती हों !

एक अन्य महिला से यह कठोर बातें न सही गईं। बोली—रहने भी दो बहन, एक बहन की इज़्ज़त जाती है और तुम्हें दया नहीं आती। एक की इज़्ज़त गई, तो समझ लो सब की गई।

इस पर वह कटुभाषिणी स्त्री और भी जल उठी—सबकी इज़्ज़त क्यों जायगी ! इज़्ज़त उसकी गई, जिसने कुकर्म किया। अपना-अपना पाप-पुन्न अपने साथ है। अगर कोई कहे कि विधवाओं का गुज़र नहीं होता, इसलिए उन्हें पुरुषों के हाथों अपनी लाज बेचनी पड़ती है, तो मैं कहती हूँ—ऐसा कोई घर नहीं, जिसमें एकाध विधवा का निबाह न हो जाय। किन्तु, इन राँड़ों को रखे कौन ? इन पर दया करके रख लो, तो अपने आदमी से हाथ धोना पड़े। हम लोगों को इतनी छुट्टी कहाँ है कि रात दिन पुरुषों को रिझाने की पड़ी रहे ? और प्रेम भी तो दिखाते नहीं बनता। कौन स्त्री है, जिसे अपने पुरुष से प्रेम न हो ; लेकिन लज्जा-संकोच के मारे हम अपना प्रेम नहीं प्रगट कर सकतीं। घर में किसी विधवा को रख लो कि कुछ उबार होगा, तो वह माया फैला कर

पति पर जादू डाल देती है और घर की स्त्री को अपनी भूल पर पछताने के सिवा और कुछ नहीं सूझता। अगर विधवा में सेवा और लाज का भाव हो, तो उसके लिए हरएक घर में स्थान है।

साँझ तक यों ही आलोचना होती रही। यहाँ तक कि पंचायत का समय आ गया।

• • •

संध्या का समय है। दीपक जल गये हैं। गाँव के चौबारे में पंचायत बैठी हुई है। सारा गाँव तमाशा देखने के लिए जमा है। खड़े होने की जगह मिलना भी मुश्किल है।

पंचों ने हुक्म दिया—सुखिया क्या अब तक नहीं आई? हम लोग क्या रात भर उसकी बाट देखते रहेंगे? उसे जो कुछ कहना हो, आकर पंचों के सामने कहे। नहीं, उसका मुँह काला करके गाँव से निकाल दिया जायगा। समाज के मुँह में कालिख लगाकर वह अपने घर में आराम से बैठने न पायेगी।

वहाँ इस समय जितनी देवियाँ थीं, प्रायः सभी समाज की मर्याद-रक्षा का बीड़ा-सा उठाये हुए थीं। चार-पाँच औरतें तुरन्त पुलीस के सिपाहियों की तरह इस हुक्म की तामील करने के लिए चल पड़ीं। सुखिया की इस दुर्दशा का आनन्द लूटने और उसके मुख से उसके आशिक़ का नाम सुनने के लिए उनके प्राण तड़फड़ा रहे थे। गाँव में ऐसा रोमांचकारी दृश्य देखने का आज तक किसी को अवसर न मिला था। बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सब-के-सब आँखों में उत्सुकता और

कानों में कुतूहल और अंग-अंग में कुत्सा भरे खड़े थे ! अगर इस समय वहाँ खड़े होने के लिए उन पर एक-एक आने का टैक्स भी लगा दिया जाता, तो वहाँ से न टलते।

सुखदा अपनी माता के चरणों पर सिर रखे पड़ी हुई थी, और उसकी माता उसकी पीठ पर हाथ रखे रो रही थी। इस समय अगर मौत आ जाती, तो दोनों दौड़कर उसका स्वागत करतीं। सुखदा लज्जा में डूबी हुई थी, और माता दुःख में। उसकी आत्मा ने बेटी का अपराध क्षमा कर दिया था और अब वह इस निन्दा और अपमान से उसकी रक्षा करना चाहती थी। माता का हृदय बेटी को समाज-मर्यादा की भेंट चढ़ाने के विचार को भी मन में न आने देता था।

सहसा कई महिलाओं ने घर में प्रवेश किया और उसके सामने आकर एक देवी ने डाँट बताई—तुम यहाँ बैठी टेसुवे बहा रही हो और वहाँ पंच लोग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। अब रोने-धोने से काम न चलेगा। अब तो जो किया है, उसका फल भोगना पड़ेगा।

माता ने दीन स्वर में कहा—तो चलो, मैं पंचों के पास चलती हूँ। उनका जो न्याव होगा सिर और आखों पर।

'और यह महारानी क्या यहीं बैठी रहेंगी ?'

'इस पर दया करो। मुझे डर लगता है, कहीं वहाँ जाकर अचेत न हो जाय !'

'यह नखड़े रहने दो ! ऐसी छुई-मुई नहीं हैं कि वहाँ जाते ही अचेत हो जायँगी। गाँव भर के मुँह में कालिख लगाकर अब मुँह छिपाने से गला न छूटेगा। न रोने से कोई समझेगा कि सीता हैं !'

यह कहकर चारों ने सुखदा को हाथ पकड़ कर उठाया और घसीटती हुई चौबारे की ओर चलीं।

सुखिया जा रही है; पर उसे तन-बदन की कुछ सुधि नहीं है। वह कहाँ जाती है, कौन उसे घसीटे लिये जाता है, उसे इसका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। उसे उस अर्ध-चेतना की दशा में ऐसा मालूम होता है कि यम के दूत उसे नरक की ओर घसीटे लिये जा रहे हैं।

यकायक उसके हाथ-पाँव ढीले पड़ गये और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

मगर देवियों को अब भी उस पर दया न आई। उसे घसीटने लगीं, कि माता ने पीछे से आकर बेटी को गोद में उठा लिया और इस भार से दबी होने पर भी उसे लिये हुए चौबारे में जा पहुँची। इतनी शक्ति उसकी बूढ़ी काया में कहाँ से आ गई थी?

जब सुखिया की देह चौबारे में पहुँची, तो उस भीड़ में सनसनी दौड़ गई। लोगों की आँखें फैल गईं, मुँह खुल गये और कान खड़े हो गये। साँस रोके और एड़ियाँ उठाये सब-के-सब उस अभागिनी के दर्शन का आनन्द उठा रहे थे।

मुखिया ने गम्भीर स्वर में कहा—सुखिया, तू ठाकुर की कन्या है और तुझे मालूम है कि हमारे कुल में विधवाओं का जीवन कितना पवित्र होता है; लेकिन तूने कुल-मर्यादा को भ्रष्ट कर दिया और समाज के मुँह में कालिख लगा दी। लेकिन समाज अकेले तुझी को दण्ड नहीं देना चाहता। उस पापी को भी दण्ड देना चाहता है, जिसने यह कुकर्म किया। अगर तू उसका नाम बता दे, तो हम उसे दबायेंगे

कि तुझे स्त्री की तरह घर में रखे। अगर न रखेगा, तो उसका हुक्का-पानी बन्द कर देंगे ; लेकिन अगर तू उसका नाम न बताएगी, तो पंच लोग यही समझेंगे कि तूने किसी नीच जाति के पुरुष के साथ मुँह काला किया है और उसका दण्ड बड़ा कठोर होगा। बोल, क्या कहती है ?

एक हज़ार आँखों ने सुखिया की ओर ताका। सुखिया कुछ न बोली।

मुखिया ने फिर पूछा—तू उसका नाम क्यों नहीं बतलाती ?

सुखिया चुप।

'न बताएगी ?'

सुखिया चुप।

'यह समझ ले, इसका बड़ा कड़ा दण्ड होगा !'

सुखिया चुप।

मुखिया ने अबकी खड़े होकर कठोर स्वर में कहा—यह नहीं बताना चाहती ; इसलिए इसका सिर मुँडवाकर और इसके मुँह में कालिख लगवाकर आज ही इसे गाँव से निकाल दिया जाय।

यह नादिरशाही हुक्म सुनते ही चार-पाँच आदमी सुखिया की ओर लपके थे कि सहसा पीछे से भीड़ को चीरते हुए कुँअर साहब आकर पंचों के सामने खड़े हो गये और सिर नीचा किये हुए बोले—पंचो, वह पापी मैं हूँ, वह दुष्ट मैं हूँ ! आप लोग मुझे जो दण्ड चाहे दें, उसे स्वीकार करूँगा। अब तक कायरता और झूठे अभिमान में पड़कर मैंने इस देवी के साथ जो पशुता की है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ।.........

सभी के प्राण उछलकर ओठों पर आ गये और वह भीड़ सिमट-कर कुँअर साहब के समीप आ गई। लोगों ने एक दूसरे की ओर आँखें मारी, मुसकिराये, सिर हिलाये और मूछों पर ताव दिये।

कुँअर साहब ने कहा—आज से यह देवी मेरी स्त्री है, और इसका बालक मेरा पुत्र है। समाज मेरा जो बहिष्कार चाहे करे।

यह कहकर कुँअर साहब ने सुखिया की ओर देखकर कहा—सुखदा, तुम मेरी इस कायरता को क्षमा करो। मेरी इज़्ज़त बचाने के लिए तुमने अपने ऊपर जितना अपमान और उपहास लिया, वह मुझे सदैव तुम्हारा दास बनाए रखेगा। आज मैं इतने आदमियों के सामने और ईश्वर को बीच देकर कहता हूँ कि मैं तुमसे विवाह करूँगा और तुम्हें उसी आदर से रखूँगा, जैसे ललिता रहती है। तुम मेरी पत्नी हो, समाज के सामने भी और ईश्वर के सामने भी।

यह कहते हुए वह सुखदा के पास गये और उसका हाथ पकड़कर उठाना चाहते थे कि चीख मारी और फिर दोनों हाथों से सिर पकड़-कर बैठ गये। उसकी छाती पर सिर रखकर रोने लगे।

सुखदा देवी के प्राण निकल चुके थे।

आँसू की दो बूँदें

सुरेश कनक के रूप पर मुग्ध था, कनक सुरेश के चरित्र पर। उसके क्लास में पचास युवक थे, एक-से-एक रूपवान, एक-से-एक कुशल ; पर वह नम्रता, वह शराफ़त, वह सेवा-भाव जो सुरेश में था, और किसी में नहीं। सुरेश बार-बार चाहता था, उससे कहे—कनक, क्या तुम मेरी जीवन-संगिनी बनकर मेरा उद्धार करोगी ? लेकिन, यह भय होता था कि कहीं वह अस्वीकार कर दे, तो जो आपस की मैत्री और सद्भाव है, वह भी जाता रहे। सोच-सोचकर रह जाता था। कई बार एक पत्र लिखकर अपनी इच्छा प्रकट करनी चाही ; पर लिखते न बना, और जब लिखते न बना, तो कहते क्या बनता ?

लेकिन जब परीक्षाएँ समाप्त हो गईं, और घर चलने की तैयारियाँ

होने लगीं, तो सुरेश ज़ब्त न कर सका। अब मौन रह जाना मुक़दमा हारना था। कौन जाने फिर कभी मुलाक़ात हो या न हो, भाग्य किसे कहाँ ले जाय!

संध्या का समय था। कॉलिज के बहुत-से छात्र चले गये थे। आज यह दोनों भी जाने की तैयारी कर रहे हैं। रात की गाड़ी से जायँगे। सुरेश घात में लगा हुआ था कि कब कनक को एकान्त में पा जाय, और मन की बात कह डाले; लेकिन कनक को जैसे आज उसकी ओर ताकने का भी अवकाश नहीं है। कभी इस सहेली को पहुँचाने स्टेशन जा रही है, कभी उस बहन के साथ खिलौने खरीदने बाज़ार जा रही है। बड़ी मुश्किल से पार्क में अवसर मिला। वह लपकी हुई चली जा रही थी कि सुरेश ने क़दम बढ़ाकर उसे पकड़ा और बोला—कनक, मैं तुम से कुछ कहना चाहता हूँ।

कनक उसके मुख का भाव देख कर उसका आशय समझ गई। बोली—अभी क्या जल्दी है, फिर कह देना।

सुरेश झेंप गया। यह बात उसे बहुत पहले कहनी चाहिए थी। अब तक सारे मरहले तय हो गये होते। कनक ने वही व्यंग किया था।

शर्माता हुआ बोला—भय होता है कि कहीं तुम नामंज़ूर न करो!

'मैंने तुम्हें ऐसे भय का कोई अवसर तो नहीं दिया।'

'तो तुम्हें स्वीकार है!'

'हृदय से; लेकिन शर्त यही है कि मेरे माता-पिता भी स्वीकार करें।'

सुरेश कुछ निराश होकर बोला—यह शर्त तो टेढ़ी है। मेरा खयाल

है कि विवाह के विषय में हमें स्वतंत्र रहना चाहिए। बुड्ढों की निगाह में सबसे अधिक महत्व धन का होता है, प्रेम का महत्व समझने की उनमें सामर्थ्य ही नहीं होती। अगर तुमने उन पर टाला, तो मुझे निराश हो जाना चाहिए। उनका फ़ैसला जो कुछ होगा, वह मैं जानता हूँ।

कनक बोली—मैं यह नहीं मानती। माता-पिता इसके सिवा और क्या चाहते हैं कि उनके बच्चों का जीवन सुखी हो? अगर उन्हें विश्वास हो जाय कि प्रेम हमें धन से अधिक सुखी बना सकता है, तो वे कभी आपत्ति न करेंगे। और उन्हें यह विश्वास दिलाने में मैं कोई बात उठा न रखूँगी।

'मुझे तो डर लग रहा है, कनक! कहीं यह हमारी आखिरी मुलाक़ात न हो।'

'मैं अपने माता-पिता को इतना मायांध नहीं समझती; लेकिन ईश्वर न करे, ऐसा ही हो, तो मैं साफ़ कह दूँगी—मैं विवाह न करूँगी। मैं दिल में तुम्हें वर चुकी हूँ; और किसी दूसरे पुरुष की कल्पना भी नहीं कर सकती। अपने नारीव्रत का पालन करते हुए यह सारा जीवन ब्रह्मचारिणी बनकर काट दूँगी'—यह कहते हुए उसने आवेश में सुरेश का हाथ पकड़ लिया और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

• • •

गाड़ी उड़ी चली जा रही थी और कनक बैठी सोच रही थी—माताजी से सब हाल कह दूँगी। इसमें शर्म की कोई बात नहीं। मैं साफ़ कह दूँगी—मैंने सुरेश को वर लिया है, आप उन्हीं से मेरी शादी कीजिए। उनके पास धन नहीं है; लेकिन उनके प्रेम के सामने मेरी नज़रों में धन

का कोई मूल्य नहीं। रास्ते भर सुरेश की सूरत उसकी आँखों के सामने नाचती रही, और वह उस भविष्य की कल्पना करके मन-ही-मन मगन हो रही थी, जब दोनों प्रेम के साथ धर्म के बन्धन में बँध जायँगे ; लेकिन इन मीठे स्वप्नों के बीच उसे कभी-कभी एक विचित्र शंका-सी हो जाती थी—कौन जाने क्या होगा—और इससे उसका मन विकल हो जाता था। जब वह अपने मकान पर पहुँची तो उसका मुख उदास था।

माता ने उसे गले से लगाते हुए पूछा—तेरा जी अच्छा नहीं है क्या कनक ?

कनक मुसकिराकर बोली—मेरा जी ? मैं तो बिल्कुल हट्टी-कट्टी हूँ। कभी सिर-दर्द भी नहीं हुआ।

'तो चेहरा क्यों उतरा हुआ है ?'

'रात भर जागना पड़ा, अम्मा ! गाड़ी में जगह न थी।'

'तो जाकर थोड़ी देर सो रह, नहीं सिर भारी हो जायगा।'

'अभी मुझे नींद न आएगी अम्मा। बाबूजी कहीं गये हैं क्या ?'

'परसों तेरे लिए एक वर देखने दिल्ली गये हैं। शायद आज आते हों।'

कनक सिर झुकाकर लजा मिली हुई गंभीरता से बोली—मेरे विवाह की अभी कौन जल्दी पड़ी है, अम्मा ?

'जल्दी क्यों नहीं है, बेटी। बिरादरी में अभी से लोग आलोचना करने लगे हैं। फिर ज़िंदगी का कौन ठिकाना। पौरुख रहते इस काम से छुट्टी पा जाना ही अच्छा है।'

'लेकिन मुझसे पूछ तो लेना चाहिए था।'

'तो अभी कौन बात पक्की हो गई है ? तू आ गई है, तुझसे भी पूछ लेंगे।'

कनक ने बहुत सकुचाते हुए, सुरेश से जो बात-चीत हुई थी, वह माँ से कह सुनाई और दबे हुए शब्दों में यह भी जता दिया कि वह सुरेश के सिवा और किसी से विवाह न करेगी।

माता ने प्रसन्न होकर कहा—तू उस लड़के का पता बता देना। मैं उसी को ठीक करवाऊँगी। हम लोग तो यही चाहते हैं कि तू सुखी रहे; अगर तेरी यही इच्छा है, तो हमें क्या इनकार !

रात की गाड़ी से ठाकुर साहब आ गये और बड़ी देर तक बैठे कनक से उसकी परीक्षा आदि के विषय में बातें करते रहे। कितने ही सामाजिक और राजनैतिक प्रसंग छिड़े और ठाकुर साहब बेटी का ज्ञान-विस्तार देखकर चकित हो गये।

जब वह भोजन करके लेटे, तो कनक की माँ ने लड़के की बात छेड़ दी। ठाकुर साहब ने गिरे हुए मन से कहा—कुछ ठीक नहीं हुआ। मैं पांच हज़ार से आगे नहीं जा सकता। एक दूसरा आदमी १५ हज़ार दे रहा है। वहीं लड़के की सगाई हो रही है। मैं इतने रुपए कहाँ से लाता !

पत्नी ने लापरवाही से कहा—अच्छा ही हुआ वहाँ तय न हुई, नहीं बड़ा बखेड़ा होता। कनक ने अपने क्लास के एक लड़के का पता दिया है। दोनों में विवाह की बातचीत भी हो चुकी है। यों समझो कि बात पक्की हो गई है। तुम जाकर टीका कर आओ—यह कहकर उसने सुरेश का पता और उसका फोटो ठाकुर साहब के हाथ में दे दिया।

ठाकुर साहब ने पता देखते ही कहा—अरे, यह तो वही लड़का है

जिसे देखने मैं गया था। मेरे ही सामने वह भी काशी से आया। यही चेहरा है। शायद उसे मालूम न होगा कि मैं ही कनक का पिता हूँ। तुम कनक से कह दो, एक पत्र लिखकर डाल दे। उसका जवाब आते ही मैं फिर वहाँ जाऊँगा। यह काम हो जाय, तो क्या कहना !

• • •

कनक ने उसी दिन सुरेश के नाम पत्र लिखा ; लेकिन एक सप्ताह गुज़र जाने पर भी कोई जवाब न आया। कनक हैरान थी कि माजरा क्या है। क्या पत्र पहुँचा ही नहीं, या कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनकी तबीयत अच्छी न हो, या कहीं दो-चार दिन के लिए बाहर चले गये हों। लज्जित भी थी कि माता-पिता मन में क्या सोचते होंगे कि इसी आदमी पर यह इतना फूली फिरती थी। आठवें दिन ठाकुर साहब ने खुद जाने का निश्चय किया। उन्हें भी यही भ्रम हुआ था कि पत्र नहीं पहुँचा ; मगर जल्दी इस बात की थी, कि कहीं पन्द्रह हज़ार वाले महोदय की कन्या से संबंध ठीक हो गया, तो फिर कुछ न होगा। रात की गाड़ी से दिल्ली जा पहुँचे। सुरेश के पिता से तो कुछ कहना व्यर्थ था ; क्योंकि वह पहले ही इनकार कर चुके थे, इसलिए उन्होंने सुरेश ही से बात-चीत करना मुनासिब समझा।

सुरेश ठाकुर साहब को देखते ही कुछ सिटपिटा गया, मानो कोई बोझ सिर पर आ पड़ा हो। मामूली शिष्टाचार भी न कर सका। सिर झुकाए मौन बैठा रहा।

ठाकुर साहब ने आप एक कुरसी खींच ली और बैठते हुए बोले—तुम्हें कनक का पत्र तो मिल ही गया होगा। मैं तुम्हारे जवाब का इंत-

ज़ार कर रहा था। फिर मैंने सोचा, इंतज़ार करना फ़ुज़ूल है। जब तुम लोगों में बात-चीत हो चुकी है, तो केवल लगन की तिथि आदि का तय करना ही मेरा काम रह गया है। रह गया दहेज़ का सवाल। मैं धनी नहीं हूँ; लेकिन कनक के सिवा मेरे कोई दूसरी संतान नहीं है, और मेरे पास जो कुछ है, या आगे होगा, वह कनक का और तुम्हारा है, और मैं क्या कहूँ। रुपये एक हाथ से आते हैं, दूसरे हाथ से निकल जाते हैं; रहनेवाली चीज़ प्रेम है और कनक इस विषय में आदर्श कुमारी है। उसने तो मन में तुम्हें वर लिया है, और किसी वर की कल्पना भी अब उसके मन में नहीं आ सकती।

सुरेश ने एक पुस्तक खोलकर उसके पन्ने उलटते हुए कहा—पिताजी ने आपको जो जवाब दिया था, उसके ख़िलाफ़ अब मैं क्या कर सकता हूँ? पिता की आज्ञा मानना मेरा धर्म है।

'अगर पिता की आज्ञा ही पर सब कुछ था, तो तुमने कनक से क्यों बात-चीत की। एक लड़की का जीवन मिट्टी में मिलाकर तुम सुखी नहीं हो सकते। जिस तरह तुम दूसरी कन्या से विवाह करने पर राज़ी हो, क्या तुम समझते हो, इसी तरह कनक भी किसी दूसरे पुरुष से विवाह कर लेगी? वह चाहे घुल-घुलकर मर जाय; पर तुम्हें वर लेने के बाद अब वह किसी दूसरे पुरुष का ध्यान भी नहीं कर सकती। दस-पाँच हज़ार रुपयों के पीछे अपने क़ौल से फिरकर और एक बालिका का सर्वनाश करके क्या तुम पाप नहीं कर रहे हो?'

'मैंने तो कह दिया, आप पिताजी को राज़ी कर लीजिए, मैं तैयार हूँ।'

तुम्हारे पिताजी को राज़ी करना मेरे क़ाबू से बाहर है। मैं तो तुम्हारी शराफ़त पर भरोसा करके आया था। नवयुवकों पर ही समाज की आँखें लगी हुई हैं। उसको बनाना-बिगाड़ना उन्हीं के हाथों में है। वही उसका सिर ऊँचा कर सकते हैं। अगर उनमें भी विवेक का यही हाल है, तो इस समाज का भगवान् ही मालिक है। मैं इसे पिता की आज्ञा का पालन नहीं, स्वार्थांधता और कायरता कहता हूँ'—यह कहते हुए ठाकुर साहब उठ खड़े हुए, और सीधे स्टेशन पर आकर दम लिया।

• • •

कनक को यह हाल मालूम हुआ, तो उसका रक्त खौल उठा—यह अपमान! और उस व्यक्ति के हाथों, जिस पर वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुकी थी। पहला उद्गार जो उसके मन में उठा, वह यह था कि तुरन्त दिल्ली जाकर सुरेश को ऐसा लताड़े कि उम्र भर याद करे; लेकिन एक ही क्षण में यह भाव ग़ायब हो गया। ऐसे बेवफ़ा आदमी को लताड़कर ही वह क्या पायेगी; अगर अब वह विवाह करने पर राज़ी भी हो जाय तो क्या इस अपमान के बाद कनक उससे विवाह कर सकती है? कभी नहीं। वह अपनी एकान्त कुटी में जाकर खूब रोई। मनुष्य इतना नीच, इतना स्वार्थी हो सकता है! और सुरेश-जैसा चरित्रवान्- आदर्शवादी युवक इतना नीचे गिर सकता है, तो वह किस पर विश्वास करे? तो क्या वह उम्र भर पृथ्वी का भार बनी हुई, निराशा की वेदना सहती रहेगी? नहीं, कदापि नहीं। ऐसे जीने से मर जाना ही अच्छा है, कहीं अच्छा! आत्महत्या के सिवा अब उसके लिए और

कोई राह नहीं है। माता-पिता को दुःख होगा ; लेकिन यह दुःख उस दुःख के सामने क्या है, जो उसे रोते और कलपते देखकर होगा। वह अपने प्राण देकर उनकी चिन्ताओं का अंत कर सकती है, और क्या प्राण दे देना बहुत कठिन है ? कनक को मालूम हुआ, इससे सरल और कुछ हो ही नहीं सकता। केवल एक पल में उसके सारे कष्टों और वेदनाओं का अन्त हो जायगा।

मगर थोड़ी ही देर के बाद उसके भावों ने पलटा खाया। इस तरह प्राण देकर वह किसका कल्याण कर सकती है ? उस निर्दयी सुरेश की आँखों में आँसू तक तो न आएगा। समाज में दो-चार दिन आलोचना होगी, और फिर लोग भूल जायँगे। हर साल ही तो सैकड़ों युवतियाँ इसी प्रकार की बाधाओं से हारकर जान पर खेल जाती हैं। नतीजा क्या होता है ? नहीं, वह इस अपमान का मज़ा चखाएगी। हत्या अमानुषीय है ; लेकिन जिस हत्या से समाज की आँखें खुलें, वह हत्या उस कड़वी दवा की तरह है, जो रोगी को दी जाती है। समाज को मालूम तो हो जायगा कि अबला का जीवन मिट्टी में मिलाने का क्या नतीजा होता है ! अपने विषय में उसे कोई भय न था। उसका तो सर्वनाश हो ही गया, फाँसी पर मरे, या रो-रोकर मरे, एक ही बात है। थोड़ी देर में यह नशा भी उतर गया। जिससे इतना प्रेम किया, उसकी हत्या ! नहीं, नहीं। उसे इस कल्पना ही से रोमांच हो उठा। अगर वह नीच है, तो क्या मैं भी उसके साथ पशु हो जाऊँ ? अगर कोई भगवान् है, तो इसका दण्ड वही देगा। मेरे लिए सीधा रास्ता है, क्या वह दूसरी स्त्री के साथ सुखी रह सकता है तो मैं दूसरे पुरुष के साथ सुखी नहीं रह सकती ? क्यों

नहीं रह सकती ? उसे दिखा दूँ कि अगर तुझे मेरी परवाह नहीं है, तो मैं भी तुझे कुछ नहीं समझती। संसार में क्या चरित्रवान् युवक हैं ही नहीं ? और क्या सुरेश से ज़्यादा कमीना आदमी हो सकता है ? थोड़े से रुपयों के लिए ! अधम !

साँझ होते-होते भावनाओं की यह धारा भी बदल गई। मैं भी कितनी पागल हूँ। सच पूछो, तो सुरेश के साथ मेरा पाणिग्रहण हो चुका। क्या भाँवरों ही का नाम विवाह है ? ब्याह तो मन का एक संकल्प है। जिसे हृदय में वर लिया, वह अपना पति है। नीच सही, लोभी सही, कायर सही, उसे तो वर चुकी हूँ। पुरुष अगर नीचता करे, तो उसके साथ मैं नारी-जाति की मर्यादा क्यों भ्रष्ट करूँ ? क्या मैं आजीवन क्वाँरी नहीं रह सकती ? क्यों न इन कमीनों को दिखला दूँ, नारी-जीवन तप का जीवन है ? अपने धर्म के सामने, मर्यादा के सामने, नारी जीवन की लालसाओं को तुच्छ समझती है। तुम दुनिया के कुत्ते हो, पैसों पर अपनी आत्मा बेचते फिरो; नारी अपने गौरव के लिए जीवन की सारी बाधाओं को झेल सकती है; और क्या विवाहित जीवन में ही सारे सुख भरे हुए हैं ? सेवा में, त्याग में, परमार्थ में क्या सुख ही नहीं है ? नहीं, दुखियों को खिलाने में जो सुख है, वह अपना पेट भर लेने में नहीं ! अगर वह देह का सुख है, तो यह मन का और आत्मा का सुख है ! और सबसे महान् सुख है आत्म-गौरव की रक्षा !

• • •

पाँच साल बीत गये। कनक के माता-पिता दोनों का देहान्त हो गया। कनक के लिए संसार में अब कोई आश्रय नहीं है। उन्होंने

कई बार चाहा कि कनक का विवाह करके निश्चिन्त होजायँ; लेकिन कनक विवाह करने पर राज़ी न हुई। माता-पिता के जीवन ही में उसने भारतीय महिला-मण्डल में सेविका का अवैतनिक पद प्राप्त कर लिया था और तन-मन से अपनी बहनों की सेवा कर रही थी। कहीं अकाल पड़े, कहीं बाढ़ आये, कहीं कोई बीमारी फैले, कनक सबसे पहले कार्यक्षेत्र में कूद पड़ती थी। इस कठिन तपस्या में कभी-कभी उसे मीलों पैदल चलना पड़ता, न खाने-पीने का कुछ संयम था, न रहने का। कभी किसी मन्दिर में रात काटी, तो कभी किसी झोंपड़े में पड़ रही। देहात में फल और मेवे और केले कहाँ मयस्सर। इन पदार्थों की ओर अब उसकी तृष्णा भी न थी। चना-चबेना, साग-रोटी, जो कुछ मिल जाय उसी में उसे मेवे और मुरब्बे का स्वाद मिलता था। उसके जीवन का आदर्श अब भोग नहीं, तप था। उसके रूप में अब वह सुघड़ाई न थी, न गालों पर वह लाली, न ओठों पर वह गुलाबीपन, न आँखों में वह नशीलापन, न अंगों में वह कोमलता और न पहनावे में वह सजावट और नफ़ासत। अब वह देहातिन थी, उन्हीं के सुख-दुख की साथिन, उन्हीं की तरह गजी-गाढ़ा पहननेवाली, वैसी ही हराठिन; मगर जो स्नेह और जो आदर उसे मिलता था, उसका तो उसने कभी स्वप्न भी न देखा था। पहले वह अपने लिए जीती थी, अब दूसरों के लिए। कितनी ही अन्य सेविकाओं की भाँति वह देहातिनों को अपने ठाट-बाट और रंग-ढंग से चकित न करती थी। वह देहातिनों में देहातिन थी, जिसे वे अपने ही में-से एक समझती थीं और उस पर विश्वास करती थीं।

बरसात के दिनों में बिहार के देहातों में बाढ़ आई थी। कनक गाँवों

में घूम-घूमकर अन्न-वस्त्र बाँटती फिरती थी। संध्या समय वह एक छोटा-सी नदी के किनारे खड़ी उस पार जाने के लिए नाव का इंतज़ार कर रही थी, और भी पचासों आदमी नाव के इंतज़ार में खड़े थे। सहसा एक साधु आकर उसके सामने खड़ा हो गया, और उसे प्रणाम किया। कनक चौंक पड़ी। इस आदमी को तो कहीं देखा है! आवाज़ भी पह-चानी-सी लगती है; मगर कहाँ देखा है, याद नहीं आता।

साधु बोला—तुमने मुझे पहचाना न होगा कनक। मैं हूँ—सुरेश।

कनक का कलेजा धक से हो उठा। सुरेश इस भेस में! सिर पर बड़े-बड़े बाल, लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूँछें, पीठ पर मृगछाला बाँधे, हाथ में कमण्डल लिए, उसकी ओर भक्ति की आँखों से देख रहा था।

उसने चकित होकर पूछा—इस भेस में तो सचमुच मैंने तुम्हें नहीं पहचाना; मगर तुम साधु कब से हो गये? तुम्हारा तो विवाह हो गया था?

'हाँ, विवाह हुआ था; लेकिन वह बड़ी दुःख-भरी कथा है। उसका गुप्त रहना ही अच्छा। बस, इतना ही काफ़ी है कि स्त्री मर गई और मैं संसार से विरक्त होकर अपने पापों का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।'

कनक की उत्सुकता और भी बढ़ी। बोली—स्त्री को मरे कितने दिन हुए?

'वह तो विवाह के छठे महीने ही मर गई।'

'क्या बीमारी थी?'

'यह न पूछो।'

'मुझे तुम्हारी इस विपत्ति पर दुःख हो रहा है!'

'नहीं, कनक! उस जीवन से यह वैराग कहीं अच्छा है। मैं अब सुखी हूँ—जितना सुखी होना मनुष्य के हाथ में है!'

'मेरा तो खयाल है कि सुखी होना सोलहो आना मनुष्य के हाथ में है।'

'अब मैं भी यही समझता हूँ।'

'तुमने अपने विवाह में नेवता तक न दिया।'

'अब लज्जित न करो कनक। वह विवाह नहीं था, मेरा अभाग था। उसके आते ही मेरा घर कवियों का क्लब हो गया। उसे रात-दिन कविता लिखने, सुनने और सुनाने की धुन थी। मेरे साथ, घर के साथ भी उसका कुछ कर्तव्य है—यह वह न समझती थी। मैं मरूँ या जिऊँ, उसकी बला से। उसे तो अपनी कविता से मतलब था। मैं कविता का विरोधी नहीं हूँ। हम और तुम कितनी रात तक बैठे-बैठे कविता की आलोचना किया करते थे, कितने प्रेम से कविताएँ पढ़ते थे, कवियों की सुन्दर कल्पनाओं पर कितने मस्त हो जाते थे; लेकिन अब मुझे कविता से अरुचि ही नहीं, घृणा होने लगी थी। स्त्री-पुरुष अगर जीवन के सुखों में बराबर के अधिकारी हैं, तो जिस परिश्रम से वह सुख मिलता है, उसमें भी दोनों को बराबर का हिस्सेदार होना चाहिए। तुम जानती हो, मैं पुरुष-अधिकार का समर्थक नहीं हूँ; अगर मुझे स्त्री से अलग होना पड़े, तो मैं ईमान से घर की सम्पत्ति में उसे आधा भाग दे दूँगा; लेकिन मैं यह नहीं देख सकता कि मैं तो सारे दिन और पहर रात तक मरूँ और स्त्री आराम से कवियों के साथ बैठी कविता किया करे, और उनके खिलाने-पिलाने में मेरी कमाई उड़ाया करे। मुझे यह भी मालूम होने लगा कि वह मेरी उपेक्षा करती है; बल्कि जान-बूझकर मुझे चिढ़ाती है। और किसी समय चाहे उसकी कवि-मण्डली न जमा हो; लेकिन जब

मेरे आने का समय होता था तो मण्डली जुट जाती थी और क़हक़हे उड़ने लगते थे। आख़िर एक दिन आग दहक उठी। मैं रात के नौ बजे घर आया तो देखा रसोइयाँ ग़ायब है, चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ है, और कवि-समाज जमा है। मैं क्रोधी नहीं हूँ। छः महीने तक मैंने बर्दाश्त किया, खून के घूँट पी-पीकर रह गया। आज मुझे क्रोध आ गया। अब सोचता हूँ, तो आश्चर्य होता है कि मुझे उतना क्रोध कैसे आ गया। मैंने स्त्री से न कुछ पूछा न पाछा, हंटर उठाकर मंडली में जा पहुँचा और लगा ताबड़तोड़ हंटर जमाने। कितने हंटर जमाये होंगे मुझे खबर नहीं; मगर मेरे सिर जैसे भूत सवार था। सड़ासड़ चलाये जाता था और कवियों में भगदड़ मची हुई थी; ऐसी चिल्ल-पों मची कि कुछ न पूछो। अगर उस वक्त कोई कवि महोदय उलझ पड़ते, तो मैं मरने-मारने पर तैयार हो जाता; मगर कुशल हुई कि कोई सज्जन बोले नहीं, पीठ और पेट सहलाते, रोते बिलबिलाते चले गये। मैंने स्त्री को भी न छोड़ा। पाँच-चार हाथ उस पर भी झाड़ दिये। उसकी कविता आँखों से निकल रही थी; पर उसके साथ ही उसके मुख पर ऐसा हिंसा-भाव झलक रहा था कि मुझे पावे तो कच्चा ही खा जाय!

जब कवि लोग विदा हो गये तो मैंने स्त्री से कहा—तुम्हें मेरे साथ रहना स्वीकार है या नहीं?

उसने कटार की-सी आँखें फेरकर कहा—मैं ऐसे पशु के साथ नहीं रह सकती!

मैंने कहा—अच्छी बात है, तुम जा सकती हो।

'मैं क्यों जाऊँ? मेरे पिता ने तुम्हें १५,०००) दिये हैं। वह मुझे

वापस कर दो। अगर इतने रुपये उन्होंने मेरे नाम बैंक में रख दिये होते तो मुझे १००) सूद के मिलते। मैंने तुम्हें १५ हज़ार में खरीदा है और तुमको कोई अधिकार नहीं है कि तुम मेरे किसी काम में दखल दो। तुम पुरुष हो, इस समय बलवान हो; लेकिन तुम्हारा बल न्याय का बल नहीं है, अन्याय का बल है। मैं तुम्हारी लौंडी बनकर नहीं आई हूँ, तुम्हारे घर की लौंडी बनकर नहीं आई हूँ, तुम्हारे साथ जलने और मरने नहीं आई हूँ। तुम आखिर डेढ़ सौ ही तो महीने में लाते हो। इसमें १००) रुपया मेरा है। तुम मेरे क़र्ज़दार हो। तुम अपने हिस्से में काम करते हो, मुझ पर कोई एहसान नहीं करते। मेरे रुपये तो बैंक में जमा हैं, मैं केवल अपना सूद खाती हूँ। अगर तुम हज़ार पाँच सौ लाते, तो तुम्हें मुझ पर रोब जमाने का कुछ हक़ होता। अभी तो तुमको मुझसे कुछ कहने या मेरे बीच में बोलने का कोई हक़ नहीं है।

मैं निरुत्तर हो गया। इस दलील का मुझे उस वक़्त कोई जवाब न सूझा और न आज ही सूझता है। मैंने पूछा—मेरे पास १५ हज़ार कहाँ रखे हैं?

'तो तुम्हारे पास जो कुछ है, वह मेरा है; और वह सब मिलाकर भी १५ हज़ार से ज़्यादा का नहीं है।'

'तो फिर मैं ही चला जाऊँ?'

'हाँ, अगर तुम मनुष्य हो!'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मन में ऐसी ग्लानि उठी कि वही कपड़े पहने घर से निकल पड़ा। फिर वह कपड़े उतार फेंके और यह

भेस बना लिया। तब से नगर-नगर घूमता हूँ, जो कुछ मिल जाता है खा लेता हूँ, अपने से जो दूसरों की सेवा हो सकती है कर देता हूँ। भीख नहीं माँगता, मेहनत करके खाता हूँ। यों कहो कि तुम्हारे साथ जो बेवफ़ाई और दग़ा की थी, उसी का प्रायश्चित्त करता हूँ। अगर अपने दिल की बातें कहूँ, तो तुम धूर्त समझोगी ; लेकिन तुम से मिलने की बड़ी अभिलाषा थी। आज वह पूरी हो गई। चारों तरफ़ से धक्के खाकर तुम्हारे सामने आया हूँ। तुम चाहो तो मुझे अपनी शरण में ले सकती हो। और कुछ कहने का तो मुझे अधिकार नहीं है। मेरे जीवन को बनाना या बिगाड़ना तुम्हारे हाथ में है।

कनक ने हमदर्दी के साथ कहा—तुम्हारी कथा बड़ी मनोरंजक है और उसके साथ ही बड़ी आँखें खोलनेवाली भी। तुम्हारी स्त्री में और चाहे जो दोष रहे हों ; लेकिन मौलिक विचारों की स्त्री अवश्य थी।

'उसकी कविताएँ बड़ी सुन्दर होती हैं। 'शशि' की रचनाएँ शायद तुमने देखी हों। उसी का उपनाम है।'

'नहीं, मैंने इधर यथार्थ जीवन की कविता पढ़ने ही में अपना समय लगाया है। 'शशि' से मेरा परिचय नहीं है।'

'उसकी रचना अद्भुत है। अवश्य पढ़िए।'

'तुम कहते हो, तो देखूँगी।'

'और मेरे विषय में ?'

'मैंने जो निश्चय कर लिया है, उसी को निभाऊँगी। मेरा जीवन सुखी है।'

'यही तुम्हारा फ़ैसला है ?'

'हाँ, तुम भी सेवा में अपना जीवन सार्थक कर सकते हो।'

सुरेश ने फिर कुछ न कहा। एक बारगी करार पर से नदी में कूद पड़ा। कई गज़ पर एक बार उसका सिर दिखाई दिया, फिर ग़ायब हो गया। उन्मत्त नदी में किसका साहस था, जो उसे बचाने को दौड़ता? कनक की आँखों से आँसू की दो बूँदे टपक पड़ीं।

चोर

कैलासी का पति रामराज कई महीने बीमार रहा। उसके साले गोपाल ने अपने बस भर बहुत दौड़-धूप की, दवा-दारू की; किन्तु कोई चीज़ अच्छा न कर पाई। जब रामजस मर गया तो गोपाल बहुत ही दुःखी हुआ। कारज-क्रिया से छुट्टी मिली, तो कैलासी से बोला—बहन, अब मेरी राय में तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। जो दो-तीन बीघे खेत हैं, इनको बटाई पर देकर चलो हम और तुम साथ ही रहेंगे।

कैलासी आँखों में आँसू भरकर बोली—भैया, भागने से दुःख से पीछा थोड़े छूटेगा; यह तो काटने से ही कटेगा। घबराने से क्या होगा। ईश्वर की यही मर्ज़ी है। मुझे इसी जगह रहने दो। तुम्हीं कौन सोने के कौर खाते हो, जो मेरे लिए रोते हो। अब तुम्हारा काम है,

वहाँ का भी देखो, और यहाँ का भी देखो। एक लड़की है, उसको भी तुम्हीं को देखना पड़ेगा; और कौन बैठा है।

गोपाल का घर यहाँ से थोड़ी ही दूर है। वह महीने में एक बार यहां का हाल-चाल देख जाता है और उसके करने के जो काम होते हैं, उन्हें निबटा जाता है। कैलासी पुरुषों को लजानेवाली तपस्या से अपनी खेती का काम करती है और सुभागी को गृहस्थी के काम की सीख भी देती जाती है।

(२)

कई साल बीत गये। सुभागी ब्याहने योग्य हो गई। गोपाल वर की टोह में था। एक दिन आकर बहन से बोला—मैंने लड़का ठीक कर लिया। बहुत अच्छा है। दो हल की खेती होती है। लड़का पढ़ता है, कोई अट्ठारह साल का होगा। माँ, बाप, भाई-बन्धु, सब से भरा पूरा घर है।

कैलासी—यह सब तो अच्छा है, पर रुपये कहाँ हैं?

गोपाल—मैं सब जुटा लूँगा। ज़िन्दगी का कौन ठिकाना! इसी से मैं चाहता हूँ, अबकी साल सुभागी का ब्याह कर दूँ।

कैलासी—मुझे क्या, सब कुछ तो तुम्हीं को करना है। जैसा मुनासिब समझो, करो।

गोपाल—बहन, अबकी मेरे खेत में तीस मन गेहूँ हुआ है। मैं खुश हुआ, चलो सुभागी के भाग का है। और अबकी साल आधा पेट खाकर सौ रुपये जमा कर लिये हैं और अभी ब्याह होने में छः महीने हैं, सौ रुपये की आशा और है। सब जोड़-बटोर कर ब्याह हो

जायगा। लो, ये रुपये रख लो। मैं बाहर रहता हूँ तो डरता हूँ कि कहीं रुपये गायब न हो जायँ।

इतना कहकर उसने कैलासी के हाथ पर सब रुपये रख दिये और फिर बोला—तुम्हारी राय हो तो गेहूँ बेच दूँ। तब तक तो फिर गेहूँ हो जायँगे।

कैलासी गोपाल की ओर देखकर बोली—तुम खाते-पीते नहीं हो, तभी तो रुपये जमा कर लिये हैं। बिल्कुल देह सूख गई है। मैं कहती हूँ, क्यों इतनी चिन्ता करते हो? कौन अभी सुभागी सयानी हो गई है। ब्याह होगा दो-चार साल में। घबड़ाने की कौन सी बात है?

गोपाल—मैं घबड़ाता नहीं हूँ। पर क्या रुपये मिल जायँ तो छोड़ दूँ?

कैलासी—छोड़ने को नहीं कहती हूँ। आराम से जो मिले, वही लो। खाया भी करो। अपनी देह की भी फिकर किया करो। अब तुम्हें छोड़ कर मेरा और कौन है!

कैलासी की बात सुनकर गोपाल की आँखों में आँसू आ गये। बोला—तुमसे सच कहता हूँ बहन, मैं खूब खाता हूँ, और काम भी बहुत कम करता हूँ। हाँ, जो मिलता है, उसको छोड़ता नहीं।...हाँ, मैं क्या कहने वाला था? तुम बीच ही में नाराज़ होने लगीं।

कैलासी—अब जब तक तुम तगड़े नहीं हो जाओगे, मैं एक नहीं सुनूँगी।

गोपाल हँसकर बोला—तो मैं पूछता हूँ, तुम्हीं क्यों नहीं मोटी होतीं? क्या मुझी को मोटा होने की ज़रूरत है? क्यों तुम मरने की-सी हो गई हो?

कैलासी हँसकर बोली—तू हृष्ट-पुष्ट हो जायगा, तो मैं भी मोटी हो जाऊँगी।

गोपाल बोला—अबकी बार आऊँगा, तो तुम्हें मालूम नहीं होगा कि मैं वही गोपाल हूँ या और कोई।

कैलासी—चल, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न कर! तेरी चालाकी मैं जानती हूँ।

गोपाल—मैं तुम्हारी बातों में लग गया। आज जाना है।

कैलासी—क्यों आज ही चले जाते हो, गोपाल?

गोपाल—काम है और अब तो जल्दी-जल्दी आना है।

इसके बाद वह सुभागी की ओर देखकर बोला—बेटी, थोड़ा पानी पिला दो।

सुभागी ने एक लोटा पानी लाकर गोपाल के हाथ में दिया। गोपाल ने पानी पीकर सुभागी को चार आने पैसे दिये—इसकी मिठाई खाना, बेटी!

सुभागी—मैं मिठाई नहीं खाती!

गोपाल—ले ले, अब खाना मिठाई।

सुभागी कैलासी के हाथ में पैसा देने लगी। गोपाल बोला—नहीं, उन्हें मत दे। अपना पैसा अपने पास रखा कर बेटी! यह खर्च कर देंगी।

यह कहता हुआ वह बाहर निकल गया।

गोपाल चला गया तो कैलासी बड़ी देर तक रोती रही। सुभागी से कहने लगी—अपने भाई को यह दर्द होता है। आज भाई न होता तो

कौन मुझको पूछता ? जो कुछ कमाता है, लेकर दौड़ा आता है। क्या तक़दीर है तेरी बेटी ! भगवान् ने तुमको यह भी सहारा नहीं दिया। गोपाल का स्वभाव बिल्कुल बच्चों की तरह है। मेरी फ़िक्र में काँटा-काँटा हो गया है। यही तो अपना है। भगवान् आदमी को किसी तीसरे का मुहताज न करे। यही तो अपने और पराए में अन्तर है।

(३)

गोपाल कैलासी से पाँच महीने बाद मिला। कैलासी हँसकर उसकी पीठ ठोंकती हुई बोली—क्यों, यही तुम्हारी जल्दी है ?

गोपाल—पहले सब सामान गाड़ी से उतरवा लूँ, तब बातें होंगी।

कैलासी सामान देखकर दङ्ग हो गई। सब सामान था। बर्तन-भाँड़े, गहने-कपड़े, खाने का सामान, सब कुछ। कैलासी बोली—क्यों भैया, अब कुछ बाक़ी तो नहीं रह गया ? इसी में तुमने पाँच महीने लगाये हैं ? मुझे तो भैया, यह सब सामान याद भी न रहता।

गोपाल—नहीं, ऐसे ही रुक गया था। मैंने सोचा, चलो सब सामान भी साथ लेते चलें। कल मुझे फिर जाना है। लकड़ी भी लाना है। मेरे यहाँ के जमींदार साहब ने कहा है कि जितनी लकड़ी की जरूरत हो, हमारे यहाँ से कटवा लेना। बेचारे बड़े भले आदमी हैं।

दूसरे दिन गोपाल घर पहुँचकर जब लकड़ी लदवा कर चला तो अकारण ही कई क़ै और दस्त आये। कैलासी के घर पहुँचते-पहुँचते बहुत कमज़ोर हो गया। कैलासी ने गोपाल की ऐसी हालत देखकर पूछा—भैया तुम्हें क्या हो गया ?

गोपाल आँखों में आँसू भरकर बोला—बहन, अब मैं बचूँगा

नहीं ! देखो, सब सामान है। सुभागी का ब्याह कर डालना। आज सुभागी का ब्याह हो गया होता तो मैं खुशी से मरता। भगवान् ! तुम इन अनाथों की रक्षा करना !

कैलासी रोकर बोली—भैया, मुझे भी लेता चल। हाँ ! मुझ अभागी को किस पर छोड़े जाता है ? मैं नहीं जानती थी कि तुम इसी-लिए सुभागी के ब्याह की जल्दी किये हुए हो !

गोपाल ने बिलखते हुए कहा—बहन, पानी दो, अब नहीं रहा जाता ! ले लो यह, बहन !

कैलासी—भैया, पानी न पियो। हाय भगावन् ! मेरी ग़रीबी देख-कर तू इन्हें अच्छा कर देना !

गोपाल—सुभागी, आ बेटी, तेरा मुँह चूम लूँ। बहन, अब चलता हूँ ! क्षमा करना !

कैलासी बेहोश होकर गिर पड़ी। गोपाल को अन्तिम हिचकी आई और आँखें सदा के लिए बन्द हो गईं। मरने वाले के साथ कौन जाता है ? गाँव भर के लोगों ने आकर कैलासी को समझा-बुझा कर शान्त किया। कैलासी ने छाती पर पत्थर रखकर सब कुछ किया। अब वह वह न थी, पत्थर की निर्जीव मूर्ति थी। कैलासी अब सिर्फ़ जीने के लिए नहीं जीती थी, बल्कि कर्तव्य के लिए ज़िन्दा थी। किसी तरह सुभागी को किसी को सौंप दे ! बाप और मामा तो मुझको सौंप गए, अब मैं भी किसी को सौंप दूँ, तो छुट्टी मिले !

४

आषाढ़ का महीना था। पहला पानी गिर चुका था। कैलासी

आँगन में पड़ी थी और सुभागी कहती थी—अम्मा, भूख बड़ी जोर से लगी है। तुमने भी कल से कुछ खाया नहीं है। कहो, तो जो चावल मामा रख गए हैं, उसी में-से थोड़ा सा निकालकर पका लूँ, और हम और तुम—दोनों खा लें।

कैलासी—वह चावल तो भैया तेरे ब्याह के लिए रख गए हैं, बेटी! जब तक ब्याह नहीं हो जायगा, मैं उसको छूना पाप समझती हूँ।

सुभागी—तो भूखों मर जाओगी अम्मा?

कैलासी—मर तो वह गए, जिनको मरना न चाहिए था। मेरे मरने से कौन राज सूना हो जायगा। और अच्छा हो जायगा! भूखों मरने से छुट्टी मिल जायगी। हाय भैया! तुम चल दिए, मैं पापिन न गई। तुम तो मरे मेरे लिए, मैं किसके लिए जिन्दा हूँ? यही न कि भूखों मरूँ? और कौन सुख है?

सुभागी—अम्मा, अब तो मुझसे भूखों नहीं रहा जाता!

सुभागी रोने लगी और फिर बिलखने लगी—अम्मा, पहले मुझे फाँसी लगा दो, मेरा ही कौन बैठा है?

कैलासी बोली—बेटी, तुम्हारे ही लिए मैं जिन्दा हूँ। मैं मरूँगी नहीं। जाओ चावल निकाल लाओ और अपने खाने भर को बनाओ।

सुभागी—तुम नहीं खाओगी अम्मा, तो मैं भी नहीं खाऊँगी।

सहसा कैलासी के कान के पास आकर सुभागी धीरे से बोली—अम्मा, मुझे डर लगता है। जैसे घर में कोई चोर घुसा है।

कैलासी ज़ोर से बोली—बेटी, डरने की बात नहीं। यहाँ चोर नहीं आते हैं। चोर मालदारों के घर जाते हैं। यहाँ क्या रखा है?

यहाँ तो खाने तक को नहीं है। गरीबों के घर तो उनके भाई ही आते हैं, जिनको अपनी बहन प्यारी होती है। मेरी तकदीर ऐसी खोटी है कि वह भी चला गया। अब मुझ अभागी को पूछने वाला कौन है?

सुभागी—नहीं अम्मा, जरूर चोर आया है। नहीं जरूर आया है, मुझे बहुत डर लगता है।

कैलासी—तू पगली है। कह दिया कि गरीबों के घर चोर नहीं आते हैं। भाई ही आता है। और कोई नहीं आता।

सुभागी—तुम अम्मा, मेरी बात नहीं मानती हो। जरूर घर में कहीं चोर है।

कैलासी—अच्छा, भाई चोर है, किन्तु वह भी मेरा भाई और तेरा मामा है। अच्छा भैया, जो कोई हो, मैं तो अपना भाई ही समझती हूँ। देखो भाई, जो अपने साथ लाये हो, वह रखते जाना। मिठाई लाये हो, तो देखो तुम्हारी भानजी बड़ी भूखी है। दे दो, खाकर सो जाय। खैर, मैं तो बिना खाये भी दस-पाँच दिन गुजर कर सकती हूँ; किन्तु इस बेचारी से भूखों नहीं रहा जाता।

सुभागी—अम्मा, तुम्हें हँसी सूझती है। मैं तो कहती हूँ कि जरूर कोई चोर घर में है।

कैलासी—मैं कहती हूँ, चोर मेरे घर नहीं आयेगा बेटी, गरीबों के घर चोर क्यों आने लगे? आयेंगे तो क्या मुझको उठा ले जायँगे? फिर उठा ले जायँगे तो खाने को भी देंगे। घर का काम करवा लेंगे? मैं समझूँगी, मेरा भाई है। जब मेरा भाई कोई है ही नहीं, तो मैं समझती हूँ, सभी मेरे भाई हैं!

५

चोर तो आया था चोरी करने ; किन्तु इस दुःखिनी की बातें सुनकर दूसरी ही चिन्ताओं में ग़ोता खाने लगा। कभी सोचता, सच बातें हैं। बूढ़ी को विश्वास नहीं है कि चोर है, तभी ऐसी बातें करती है। अभी मालूम हो जाय कि सचमुच चोर है तो मेरे पकड़वाने में ज़रा भी दया न करेगी। फिर खयाल करता कि अभी ही मैंने अपने कानों सुना है कि लड़की भूखों मरती है, और इस खाने में-से एक चावल भी नहीं निकाल सकती। सब सामान रखा है, शादी के लिए। भाई देकर मर गया है। तभी तो बेचारी बड़ी दुःखी है। फिर विचारता, क्या मैं यों ही चला जाऊँ ? क्या मेरी बहन भूखों मरती होती, तो मैं चोरी करके उसका पेट नहीं भरता ? आदमी सब कुछ करता है, अपने घरवालों को आराम से देखने के लिए। अपने लिए क्या चिन्ता ! फिर सोचने लगा—हाय ! जो मेरी बहन मर गई फाँसी लगाकर, हाय ! कितना भारी दुःख है ! चोर की आँखों में आँसू आ गए। उसका जी नहीं करता कि इस दुःखिनी को मैं भी सताऊँ। वह उठकर खड़ा हो गया। फिर आवाज़ आई—अगर कुछ लाये हो तो सुभागी को दे दो, खाकर सो रहे। चोर की आत्मा बोल उठी—आज से यह मेरी बहन है। जैसे तुमने अपने मरे हुए भाई की जगह मुझे समझ लिया, उसी तरह मैं भी अपनी मरी हुई बहन की जगह तुझे समझता हूँ। और घर से बाहर निकल आया। दरवाज़े के पास खड़ा होकर बोला—तुम्हारा भाई कल दो बजे दिन को तुम्हारे पास आयेगा और यह सामान रखे जाता हूँ। किसी से कुछ कहना नहीं। मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुम मेरी बहन हो।

कैलासी और सुभागी यह आकाशवाणी सुनकर दंग रह गईं। हाय भगवान्, क्या भैया मरने पर भी मुझे नहीं भूले ! और कोई नहीं है, भैया ही मेरी मदद करने को फिर आये हैं।

सुभागी—माँ, मैं कैसे मामा को देखूँगी ? मुझे डर लगेगा।

कैलासी—चल तो देखें बेटी, क्या रख गए हैं ?

सुभागी—माँ, मुझको डर लगता है। मैं तुम्हें भी देखने नहीं जाने दूँगी। कल दिन को महावीर स्वामी का जप कर तब उस घर में जाना। अम्मा, सुनती हूँ, आदमी जिसको जीते-जी चाहता है, उसको मरने पर भी चाहता है ; और कभी-कभी मार भी डालता है। सच्ची बात है अम्मा !

कैलासी—क्या मालूम बेटी ! किसने मर कर देखा है कि सच है, या झूठ ?

सुभागी चुप हो गई। कैलासी को रात में नींद नहीं आई। कल की फ़िक्र उसको हैरानी में डाले थी। कल क्या होगा, मैं कैसे भैया से मिलूँगी ? कैसी उनकी सूरत होगी ? कहीं ऐसा न हो, मुझको भी अपने साथ ले जाना चाहते हों। इसी उधेड़बुन में ४ बज गये और मुर्ग़ों की आवाज़ सुनाई दी। कैलासी की जान में जान आई। सुभागी माँ से चिपटी सोई थी। कैलासी सोचती, मना कर गये हैं कि किसी से कुछ कहना नहीं। क्या मैं अकेली घर को खोल कर देखूँ ? अच्छा, मैं ही अकेली जाऊँगी। अभी सुभागी भी सोई है। नहीं तो वह जाने भी न देगी।

कैलासी ने धीरे से उठकर कोठरी खोलकर देखा तो सन्न रह गई।

कपड़े हैं, गहने हैं, बर्तन हैं, अशर्फ़ियाँ हैं। कैलासी से नहीं रहा गया। सुभागी को जगाकर बोली—देख पगली ! कोई डरने की बात नहीं है। भैया यह सब चीजें स्वर्ग से लाकर रख गये हैं।

सुभागी—तो अम्मा, ज़रूर मामा ही आये हैं। उन्हीं की कृपा है। मैंने तो ऐसी चीजें कभी देखी भी न थीं।

कैलासी फिर गोपाल की याद करके रोने लगी और सुभागी से बोली—अब भैया आवेंगे, तो मैं नहीं छोड़ूँगी। और कहूँगी कि जहाँ रहते हो, मुझको भी लेते चलो।

सुभागी—अम्मा, मैं कैसे रहूँगी ?

कैलासी—तुम्हें कौन डर है बेटी, हम इसी तरह तुझे देख जाया करेंगे। तुम डरना नहीं। नहीं तो तुम मर जाओगी। और देख सुभागी, मैं सब सामान देती हूँ, खूब अच्छी-अच्छी चीजें खाने को पकाना, क्योंकि भैया आज आयेंगे।

सुभागी खाना पकाने चली गई और कैलासी बैठी थी। बाहर से एक लड़का दौड़ा हुआ आया। वह कैलासी से बोला—चाची, देखो हम मामा को साथ में लाये हैं।

कैलासी—कहाँ हैं भैया ?

उसने देखा कि एक आदमी सामने ही खड़ा है। भाई बहन के पैर छूने के लिए झुका कि कैलासी बेहोश हो गई।

भाई ने बहन को उठाते हुए आँसुओं की वर्षा उसके मुँह पर कर दी। 'बहन, तुम रोओ नहीं। ईश्वर पर अपना कोई वश नहीं है। मैं तुम्हारा भाई हूँ और हमेशा भाई रहूँगा।'

कैलासी की बेहोशी दूर हो गई। बोली—भैया, मुझे छोड़कर चले गए थे ? तुम आदमी के रूप में देवता हो। मुझ दुःखिनी का रोना देखने के लिए फिर तुम चले आये ! सच कहना, मैं सपना तो नहीं देखती हूँ। तुम्हें इस दुःखिनी बहन की याद मर कर भी नहीं भूली !

भाई—तुम दरवाज़ा बन्द करवा दो तो मैं अपनी राम-कहानी सुनाऊँ। देखो बहन, तुम डरना नहीं। मैं तुम्हारा वह भाई नहीं हूँ, जो मर गया है। मैं तुम्हारा धर्म का भाई हूँ और तुम मेरी धर्म की बहन हो। मैं चोर हूँ और चोरी करने तुम्हारे घर आया था। किन्तु तुम्हारी ग़रीबी देखकर और तुम्हारी दुःख-कहानी सुनकर मैं तुम्हारा भाई बन गया। और तुम्हें अपनी बहन बनाकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ और आज से अपनी बहन समझूँगा। यह प्रतिज्ञा करता हूँ।

कैलासी—मैं कैसे समझूँ कि तुम चोर हो ? भाई तो मैं समझती हूँ। तुम देवता हो। मुझको भुलावा देते हो क्या ?

भाई—नहीं बहन, मैं देवता नहीं, दानव नहीं ; परन्तु एक पापी और दुःखी आदमी हूँ।

कैलासी—देवता नहीं तो तुम बहुत बड़े साधु तो ज़रूर ही हो, चोर नहीं !

भाई—मेरी बहन, तू मेरी बात पर यक़ीन कर ! मैं तुझे अपनी राम-कहानी सुनाता हूँ—

'मैं जाति का मुसलमान हूँ। मैं भी देहात में रहता था और खेती-बारी करता था। मेरे भी माँ-बाप छुटपन में ही मर गए। गाँव में एक जाति का चमार था। वह मुझे अपने बच्चे की तरह प्यार करता था।

उसकी भी स्त्री मर चुकी थी। उसके भी एक लड़की थी। मैं उसको बहन कहता था और वह मुझको भाई कहती थी। बस, यही भाई-बहन का नाता हम दोनों में था। उसका बाप बीमार पड़ा, और मरने का वक़्त जब आया, उस वक़्त वह बहुत दुःखी था, क्योंकि उसके एक कुँआरी लड़की थी। वही मेरी बहन थी। वह मेरे पिता के समान था।—'यह कहते-कहते भाई की आँखों में आँसू आ गए। और आँसुओं की झड़ी लग गई।

'मैं पिता से बोला—मैं तुम्हारा जवान बेटा हूँ, और आज से तुम्हारा काम मेरा हुआ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं बहन को अपनी सगी बहन समझूँगा और इसका ब्याह मैं ही खुद करूँगा।

बुड्ढा—बेटा, तुम दूसरी जाति के हो। तुम जिसके द्वार पर जाओगे, वह शायद जल्दी ब्याह करने पर राज़ी न हो।

बेटा—दुनिया मुझे दूसरी जाति का समझती हो, मगर ईश्वर तो नहीं।

बुड्ढा—बेटा, दुनिया ही को तो देखना है। ईश्वर को कौन देखता है।

बेटा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारी जाति ही में बहन का ब्याह करूँगा। जब तक ज़िन्दा रहूँगा, सोनिया को अपनी बहन समझूँगा। और अब तुम खुशी से जाओ।

बुड्ढा सोनिया को बुलाकर भाई के हाथों सौंप कर बोला—देख बेटी, यह तेरा भाई है और तू इसकी बहन है।

यह कहकर और दोनों को अन्तिम आशीर्वाद देकर बुड्ढा मर गया। और ऐसी ही वह मेरी बहन थी। वह लड़की खूबसूरत थी। गाँव

ठाकुरों का था। उन लोगों ने सोचा, इसका ब्याह न होगा तो हमी लोगों का दिल-बहलाव रहेगा। मैं जहाँ-जहाँ उसके ब्याह को ठीक करता था, वहाँ-वहाँ वे जाकर रोक देते थे, और कहते थे, उसे तो मुसलमान ही ने खराब कर दिया है। और खुद ही उसके ऊपर डोरा डालते थे। मेरी बहन मुझसे कहती थी—भैया, इन लोगों ने तो मेरा रहना मुश्किल कर दिया है। जब मैंने उसको सब तरह से रोक दिया तो उसके घर पर भी हमला करने लगे। तब मैं रात को उसके दरवाज़े पर सोने लगा था। इससे उन लोगों की दाल न गली। एक दिन गाँव में चोरी हो गई, और लाग-डाँट में मुझे भी पकड़वा दिया गया। उसमें मेरी एक साल की क़ैद हो गई। हाय, उस बेचारी ने अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए कोई और चारा न देखा, तो गले में फाँसी लगा कर जान दे दी। मैंने उसके पहले बहन सोनिया से कहा था—क्यों, तू ठाकुरों को राज़ी कर ले, तो मैं ब्याह कर दूँ। तब वह बोली—क्या भैया तुम पागल हो गए हो ? ठाकुर लोग ब्याह नहीं करते। बस, जब तक जी चाहा रखा, फिर बाद को जब बाल-बच्चे हो जाते हैं, तब बात भी नहीं पूछते ! मैं अपनी छीछालेदर करवाना नहीं चाहती हूँ। मैं बिना ब्याही रहूँगी, तुम्हारे साथ कमा-खा लूँगी।

हाय बहन ! उस घड़ी को याद करता हूँ तो कलेजे के टुकड़े हो जाते हैं। जब मैंने छूटकर सोनिया बहन को न देखा, और उसकी मौत का हाल भी सुना तो और भी दुःख हुआ। हाय, मैंने मरते हुए पिता और ईश्वर को धोखा दिया। वह तो बहन सोनिया ने खुद ही अपनी इज़्ज़त रख ली। जिस बात का वादा मैंने किया, उसको उसने पूरा

किया। वह देवी थी। तभी से बहन, मैं चोर हो गया। मैं अमीरों के घर चोरी करता हूँ और अपनी ग़रीब बहनों की सेवा करता हूँ। सेवा नहीं बल्कि अपनी भूल का प्रायश्चित्त करता हूँ। अब बहन, तुम्हीं सोचो, मैं कितना नीच हूँ। यह सब इसीलिए करता हूँ कि ईश्वर के सामने मुँह दिखलाने लायक़ हो जाऊँ।'

रोते-रोते उसकी हिचकी बँध गई। कैलासी ने पानी लाकर उसका मुँह धोया और अपने अञ्चल से पोंछते हुए बोली—इसमें तुम्हारा क्या अपराध है भाई! ऐसे समाज के लोग जब गिरने लगते हैं, तब उनके पतन के भूत उनके सिर पर घूमने लगते हैं।

भाई—देखो बहन, मैं मुसलमान हूँ। जो काम मेरे करने लायक़ हो, कहना।

कैलासी—भाई, तुम देवता हो। जो आदमी दूसरे के पीछे खुद मिट जाय, वह आदमी नहीं, देवता है। मेरी भी किस्मत अच्छी थी, जो तुम्हारे जैसा भाई मिला। मुझे आज मालूम हुआ, अब भी भाई-बहन कहने में जो प्रेम और जो उमङ्ग है, वह दूसरे नाते में नहीं।

भाई—देखो बहन, गाँव में कहना कि मेरे चाचा का लड़का है। जब मेरे भाई के मरने का हाल सुना तो दौड़ा आया है। नहीं तो वही बला तुम्हारे सिर भी आ जायगी।

कैलासी—मैं मामा और चाचा का लड़का नहीं बनाना चाहती हूँ। मैं कह दूँगी कि मेरी गरीबी देखकर देवता आकर मेरा भाई बन गया है।

भाई, बहन के पैरों पर सिर रखकर बोला—तुम खुद ही देवी हो!

नर्स

पंडित उमानाथ प्रयाग के अच्छे रईस हैं। विचार नये रखते हैं; पर चलते हैं पुरानी लकीर पर। समाज की जिन बुराइयों को रोते हैं, वही बुराइयाँ करते हैं। छूत-छात को गधापन कहते हैं; पर जाड़ों में भी कपड़े उतारकर भोजन करते हैं। तर्पण की हँसी उड़ाते हैं; पर पितृ-पक्ष में रोज़ पिंडा देते हैं। सूद की निन्दा करते हैं; पर अपने असामियों से कस कर सूद लेते हैं। अगर कभी दिल मज़बूत करके कोई नियम तोड़ना चाहते हैं, तो रमा पाँव पकड़कर पीछे घसीटती है। वह बाल-विवाह के विरोधी थे; पर जब एक अच्छे कुल का लड़का मिल गया और रमा ने ज़ोर लगाया, तो क्षमा का ग्यारह की अवस्था में विवाह कर दिया; पर जब गौना होने के पहले ही क्षमा विधवा हो गई

तो बाल-विधवा-विवाह के समर्थक होने पर भी पंडितजी उसका पुनर्विवाह न कर सके। उसे स्कूल में पढ़ने भेज दिया। यहाँ तक कि क्षमा बालिका से युवती हुई और अब उसे अपने जीवन में एक शून्य की मर्म-पीड़ा होने लगी। उसकी सभी सहेलियाँ सुहागिनें हो गईं, कइयों की गोद में बालक भी खेलने लगे, नई-नई चिंताओं और नई-नई आशाओं ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया; लेकिन क्षमा के लिए वही स्कूल था, वही पुस्तकें थीं, और वही अपना घर था, जिससे उसे दिन-दिन अरुचि होती जाती थी। उसे अब अकसर सिर-दर्द हुआ करता और कुछ स्वास्थ्य भी बिगड़ता जाता था; पर वह किसी खेल में शरीक न होती। उसे अपने वैधव्य पर दुःख नहीं, क्रोध होता था और इस क्रोध को किसी तरह निकाल न सकने के कारण अपने ही को घुलाती जाती थी।

• • •

एक दिन उमानाथ ने स्त्री से कहा—मेरा जी चाहता है, कोई अच्छा आदमी मिल जाय तो क्षमा का विवाह कर दूँ। बला से लोग हँसेंगे, इसका जीवन तो सुखी हो जायगा। सुख-दुःख तो विधि के हाथ है, कम-से-कम उसे यह संतोष तो हो जायगा कि जिस संसार में औरों को सुख मिलता है, वहाँ वह भी पहुँच गई।

रमा ने छाती पर हाथ रख लिया, जीभ दाँतों के नीचे दबा ली, आँखें फैला दीं और एक ही साँस में ईश्वर से लेकर अपने भाग्य तक को कोस गई।

पंडितजी ने ज़ोर देकर कहा—लेकिन सोचो, इस दशा में वह कब तक रहेगी?

'रहने की न कहो। ऐसी लाखों विधवाएँ आज भी पड़ी हुई हैं।'

'मगर मुझसे यह दशा नहीं देखी जाती।'

'दुःख से कोई कहाँ तक भागेगा? उसे तो झेलना ही पड़ेगा। किसी को पति का दुःख है, किसी को पुत्र का, किसी को धन का। यह तो संसार की लीला है।'

'जिस बीमारी की दवा हो सकती है, उसे क्यों पालें, यह मैं नहीं समझता। फिर यह बात हमारी ही ज़िंदगी तक तो नहीं है। अगर आज मैं मर जाऊँ और मेरे शोक में तुम भी मर जाओगी ही, तब क्षमा किसकी शरण जायगी, यह सोचो।'

'अच्छा बाबा, तुम्हारे जो मन में आवे करो। बे बात की बात मत करो। आदमी सलाह की बात करता है तो अशकुन मुँह से निकालने लगते हो!'—यह कहती हुई रमा वहाँ से झल्लाई हुई चली गई।

• • •

पंडितजी अब वर खोजने लगे; लेकिन वर न मिला। मिलता भी था, तो अधेड़ या समाज से निकाला हुआ, या दरिद्र। इसमें महीनों लग गए। आखिर बड़ी दौड़-धूप करने पर एक जवान मिला, जिसके माँ-बाप न थे; पर ज़हीन था और अपने बल पर विद्योपार्जन कर रहा था। वह इस शर्त पर राज़ी हुआ कि उसे विलायत जाने के लिए पाँच हज़ार रुपए दिए जायँ। पंडितजी राज़ी हो गए। अपना घर बेच डालेंगे। लड़की को ही तो मिलना है, चाहे अभी ले ले या मरने के बाद।

मगर जब क्षमा को मालूम हुआ तो उसने साफ़ कह दिया, वह

विवाह नहीं करना चाहती। यह अपमान वह नहीं सह सकती। जो आदमी उसके दुर्भाग्य से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, ऐसे आदमी से वह कभी विवाह न करेगी।

रमा ने समझाया—मगर माँग तो रहा है अच्छे ही काम के लिए: वहाँ से लौटेगा तो कोई अच्छी जगह पा जायगा।

क्षमा बोली—तुम क्या कहती हो अम्मा, जो अधर्म समझ कर नहीं करता, वह इतना बुरा नहीं। कम-से-कम वह अपने धर्म का सच्चा तो है। यह तो रुपयों के लिए वह काम करने को तैयार है. जिसे वह अधर्म समझ रहा है।

'तुझसे क्या मतलब ? रुपए तो हम देंगे।'

'आपको मेरा अपमान करने का कोई हक़ नहीं है।'

'अच्छी तरह सोच ले।'

'सोच लिया।'

'बदनामी से बचना कठिन है।'

'बदनाम वही होते हैं, जो बदनाम होने लायक़ होते हैं।'

• • •

उस दिन से क्षमा में एक नया जीवन आ गया। पहले आग सुलगती रहती थी। अब हवा लग जाने से प्रचंड हो गई थी। असंतोष ने विद्रोह का जामा पहन लिया था।

पुस्तकों में अब उसकी रुचि यकायक बढ़ गई। वह जी-जान से पढ़ने लगी। वह अब किसी पुरुष की लौंडी न बनेगी, स्वयं अपनी स्वामिनी बनेगी।

आखिर मिस जोशी और मिस आग़ा और सुलोचना अविवाहित रहकर क्या सुख से नहीं रहतीं? उन्हें तो कभी विवाह का नाम लेते नहीं सुना। विवाह को तो वह ग़ुलामी का पट्टा कहती हैं। तो मैं ही क्यों ग़ुलामी का पट्टा लिखाऊँ? मैं क्यों दूसरों का मुँह देखूँ? इस भाव के उदय होते ही क्षमा के मन में एक विचित्र प्रकार की शक्ति आ गई। उसका नारीत्व जैसे धुल गया और भीतर से कठोर पत्थर निकल आया। बात-बात पर लजाना और सकुचाना, अकेले घर से बाहर निकलते कलेजे का काँपना, पुरुषों के सामने अपने को नीचा समझना, रात को कोई खटका होते ही थर-थर काँपने लगना, यह सब कुछ जाता रहा। बनाव-सिंगार भी उसे बुरा लगने लगा। अपनी अन्य सहेलियों को पाउडर और रंग भरे देखकर वह उनका मज़ाक़ उड़ाती। जीवन में उसे एक नया आनन्द आने लगा, जो अपने ही सुख-दुःख में बँधा हुआ न था। सामाजिक कर्त्तव्य और सेवा का भाव जागृत होने लगा।

उसका विचार एम० ए० की डिग्री लेकर अध्यापिका बनने का था; पर सहसा उसके पिता का देहान्त हो गया और उसे जीविका की चिन्ता हुई। माता पर भार बने रहना उसे स्वीकार न था। उसने मेडिकल कॉलेज जाकर नर्स हो जाने की इच्छा प्रकट की।

रमा ने कहा—तुझे इसकी क्या चिन्ता है बेटी? तेरे पिता ने बहुत नहीं छोड़ा है, फिर भी हम दोनों की उसमें किसी तरह ज़िंदगी कट जायगी। तू जाकर कहीं नौकरी करे, यह तो मुझे अच्छा नहीं लगता। तेरे बाप की कितनी बदनामी होगी, ज़रा सोच!

'इसमें बदनामी की कौन-सी बात है अम्माँ ! अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियाँ नर्स का काम करती हैं।'

'मगर हमारे यहाँ तो रिवाज नहीं है ?'

'तो रिवाज डालना पड़ेगा। घर में कुढ़-कुढ़कर मरने से तो यह कहीं अच्छा है कि उद्योग करके आराम से रहें।'

'लोग यही तो कहेंगे कि बाप के मरते ही औरतें मजूरी करने लगीं।'

'मैं तो समझती हूँ, इसमें उनकी बदनामी नहीं, नेकनामी है। सम्पत्ति जोड़ने का अर्थ मेरी समझ में यही है कि आदमी दूसरों का हक़ दबा ले। यह जितने मोटे आदमी हैं, सभी लुटेरे हैं। और ग़रीबों का खून पी-पीकर मोटे होते हैं !'

ऐसी बातों का माँ के पास क्या जवाब था। क्षमा ने मेडिकल कॉलेज प्रार्थना-पत्र भेज दिया और एक महीने के अन्दर लखनऊ चली गई।

• • •

दो साल गुज़र चुके हैं। क्षमा लखनऊ के मेडिकल कॉलेज में नर्स है। वह अच्छी पढ़ी-लिखी होने के कारण अपने काम में इतनी कुशल है और अपनी ज़िम्मेदारी का इतना ध्यान रखती है कि जब कोई असाध्य रोगी आ जाता है, तो बहुधा उसकी सुश्रूषा के लिए वही चुनी जाती है। और वह अपनी योग्यता को बराबर बढ़ाते रखने की चेष्टा करती रहती है। डाक्टरों से कुछ-न-कुछ सीखते रहने की उसे हमेशा धुन रहती है। प्रायः जो मरीज़ उसके चार्ज में आता है, वह अच्छा हो जाता है ; और कई मरीज़ों ने तो उसकी सेवाओं से मुग्ध

होकर उसे अच्छी-अच्छी रक़में पुरस्कार में देनी चाहीं ; पर क्षमा ने धन्यवाद के साथ लौटा दीं। इससे उसका सम्मान और बढ़ गया।

अबकी गर्मियों में एक मुंसिफ़ साहब मेडिकल कॉलेज के वार्ड में दाखिल हुए। आप अच्छे शिकारी थे। सुअर का शिकार कर रहे थे। निशाना सुअर पर पड़ा ज़रूर, पर उसने उछल कर अपना खाँग उनकी रान में कुछ इस तरह चुभा दिया कि दाहनी रान बिल्कुल नुच गई। गोश्त ग़ायब हो गया, हड्डी निकल आई। बेहोश होकर गिर पड़े। साथ के आदमियों ने दौड़कर उनकी जान बचाई। घर लाये गये और दवा-दारू होने लगी। मगर कुछ ऐसी लापरवाही से काम लिया गया कि ज़ख्म बिगड़ गया और उसमें से सेरों मवाद निकलने लगा। जीने की आशा न रही। तब मेडिकल कॉलेज आए और वार्ड में दाखिल हो गए। क्षमा उनकी सेवा के लिए नियुक्त हुई। मुंसिफ़ साहब का नाम था—जटाशंकर।

पहले ही हफ़्ते में मरीज़ की हालत सुधरने लगी। क्षमा की लगन को जिन्होंने देखा था, वह भी कहते थे कि इतने मनोयोग से उसने पहले किसी को नर्स न किया था। खाने-पीने तक की सुधि न रहती।

एक दिन डाक्टर ने कहा—मुंसिफ़ साहब, आप बड़े खुशनसीब हैं कि आपको मिस क्षमा जैसी नर्स मिली। ५००) रुपए माहवार खर्च करके भी आप इतनी अच्छी सेवा न पा सकते।

जटाशंकर अब उठने-बैठने लगे थे। बोले—मैं सचमुच खुशनसीब हूँ, डाक्टर साहब! मुझे तो यक़ीन है कि इन्हीं ने मुझे बचाया, वरना आपका कुशल प्रयास भी मुझे न बचा सकता।

डाक्टर साहब जब चले गए तब जटाशंकर ने क्षमा की ओर कृतज्ञता भरी आँखों से देखकर कहा—मालूम होता है, पूर्व जन्म में मेरा आप से अवश्य घनिष्ठ संबंध था।

क्षमा ने मुसकिराकर कहा—आप पूर्व जन्म मानते हैं?

'पहले तो नहीं मानता था ; पर अब मानता हूँ।'

'तो आपने मेरे साथ कोई बड़ा उपकार किया होगा?'

'मैं तो किसी ऐसे उपकार की कल्पना ही नहीं कर सकता जिसका यह पुण्य मिले!'

'मैं तो कर सकती हूँ।'

'सच! अच्छा क्या कल्पना करती हो?'

'आपने मेरी कन्या के विवाह के लिए दान दिया होगा।'

'मुझे तो अपनी दानशीलता पर ऐसा विश्वास नहीं। जब मैं पढ़ता था, तो एक बाल-विधवा से मेरा विवाह ठीक हो गया था ; लेकिन मैंने ५०००) दहेज़ के माँगे। ऐसा कमीना आदमी कभी दान दे सकता है?'

क्षमा को पहले ही दिन से यह बात मालूम हो गई थी। जटाशंकर को कुछ मालूम न था।

क्षमा ने परिहास-भाव से पूछा—आपको ५०००) माँगते हुए ज़रा भी दया न आई?

'अब क्या कहूँ। उस वक़्त ऐसी ही बुद्धि थी।'

'आखिर आप उस बालिका के पिता को किस अपराध में इतना दंड देना चाहते थे। आपको पत्नी मिलती, आपके घर का काम-काज करती, आप उसका पालन-पोषण करते। इतना सस्ता दूसरा कोई इन्त-

ज़ाम शायद आप न कर सकते । वह बालिका कोई युरोपियन लेडी तो थी नहीं कि उसके आते ही आपका ख़र्च बढ़ जाता । वह तो पैसे की जगह धेला ही ख़र्च करती ।'

'यह अनुभव तो अब हो रहा है। रसोइया है, दो नौकर हैं, फिर भी रात का खाना नहीं मिलता । जो कुछ पाता हूँ, सब खर्च हो जाता है । अगर कभी बीमार हो जाता हूँ तो कोई पानी देने वाला नहीं ।'

'तो आप अब भी उतना ही दहेज़ माँगते हैं ?'

'आप मुझे और ज़्यादा शर्मिन्दा न कीजिए ।'

'मैं आपके मन का भाव जानना चाहती हूँ ।'

'भाव इसके सिवा और क्या है कि मुफ़्त की रक़म हाथ आ जाय और ज़रा दिल खोलकर खर्च करूँ ।'

'मुझे आश्चर्य होता है कि स्त्री का इतना अपमान करने के बाद आप कैसे आशा करते हैं कि वह आपसे प्रेम करेगी ?'

'स्त्री का मूल्य तो अब समझ में आया ।'

'आप सच्चे दिल से कहते हैं कि अब आप बिला दहेज़ लिये विवाह कर लेंगे ?'

'हाँ देवीजी, सच्चे दिल से कहता हूँ । हाँ, औरत वैसी मिलनी चाहिए ।'

'वैसी औरत तो जभी मिलेगी, जब आप वैसे पुरुष होंगे । आप अपने को इतना मूल्यवान समझते हैं कि जब तक स्त्री के पलड़े पर कई थैलियाँ रुपये की न रख दी जायँगी, वह आपके बराबर नहीं हो सकती । अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की इससे बुरी मिसाल और क्या हो सकती है ?'

'मैं आपको वचन देता हूँ, अब दहेज़ का नाम भी न लूँगा।'

• • •

एक महीने के बाद डाक्टरों ने जटाशंकर को अपने काम पर लौट जाने की अनुमति दे दी। अब वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए थे। ज़ख्म का निशान तक न था। मीलों बिना किसी कष्ट के चल सकते थे। चेहरे पर सुर्ख़ी दौड़ने लगी थी और पहले से कई पौंड वज़न बढ़ गया था। जाने के एक दिन पहले वह मिस क्षमा के कमरे में जाकर बोले—मैं कल चला जाऊँगा, क्षमा देवी!

क्षमा ने उदासीन मन से कहा—जाइए और फिर यहाँ कभी न आइएगा!

'मुझे तो इस बीमारी में जो आनन्द मिला वह जीवन में कभी न मिला था और जी चाहता है कि फिर कोई बीमारी हो जाय और यहाँ लौट आऊँ।'

'ईश्वर न करे कि आप यहाँ फिर आवें।'

एक क्षण तक दोनों मौन बैठे रहे। तब जटाशंकर ने कहा—तुम्हें मुझ पर बिल्कुल दया नहीं आती है, क्षमा?

'बिल्कुल नहीं।'

'क्या वह दया मेरी बीमारी में ही थी?'

'और क्या। आप अब भगवान की कृपा से चंगे हो गए। मेरा अब आपसे क्या सम्बन्ध?'

'तुम बड़ी निष्ठुर हो क्षमा!'

'आपसे भी ज़्यादा?'

'मैं तो तुम्हारे सामने भिक्षा माँगने खड़ा हूँ। तुमने मुझे मौत के मुँह से निकाला है, तो तुम्हीं मेरा जीवन सार्थक कर सकती हो।'

'कैसे ?'

'क्या मुझे यह शब्दों में कहना पड़ेगा क्षमा ?'

'मैं तुम्हारे मन का हाल क्या जानूँ ?'

'खूब जानती हो क्षमा ; लेकिन मुझे अयोग्य समझती हो और बिल्कुल ठीक समझती हो। मैं सौ बार जन्म लूँ तो भी तुम्हारे योग्य नहीं हो सकता। लेकिन उपासना के लिए तो केवल भक्ति चाहिए और मेरा एक-एक अणु तुम्हारे चरणों........'

क्षमा ने बात काटी—लेकिन आप जानते हैं, मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ। मेरे घरवाले जब तक राज़ी न हों, मैं कुछ नहीं कर सकती। और यह कहते मुझे बड़ी शर्म आती है ; पर जब तक कोई ऐसा पुरुष न मिले, जो उन्हें दस हज़ार दहेज़ दे सके, वह कभी मुझे छोड़ने पर राज़ी न होंगे। मैं घरवालों को ५०) महीना देती हूँ। विवाह कर लेने पर मैं उन्हें कुछ न दे सकूँगी ; क्योंकि तब आप मुझे कोई काम न करने देंगे और न मुझे बाहर का कोई काम करने का अवकाश ही मिलेगा। जब तक उन्हें इतने रुपये न मिल जायँ जिससे उन्हें ५०) सूद मिलते रहें, वह किसी तरह राज़ी न होंगे।

जटाशंकर ने लम्बी साँस खींची—क्षमा, तुमने ऐसी शर्त रख दी है कि मैं कुछ कह नहीं सकता। मेरे पास अगर रुपये होते, तो दस हज़ार क्या दस लाख तुम्हारे चरणों पर रख देता ; मगर इस वक्त तो मैं ख़ाली हाथ हूँ ; लेकिन ज़रा सोचो तो क्षमा, क्या प्रेम का कुछ भी मूल्य नहीं है ?

क्षमा ने भी मजबूरी की साँस ली—मेरे लिए वह प्रेम अमूल्य है, और उसका मूल्य मेरा जीवन ही हो सकता है; लेकिन मेरे माता-पिता के लिए तो उस प्रेम का कौड़ी भर भी मूल्य नहीं है।

दोनों फिर दो-तीन मिनट तक मौन रहे। तब जटाशंकर ने मानो अँधेरे में मार्ग पाकर पूछा—मैं तुम्हारी पूज्य माताजी और पूज्य पिताजी से मिलना चाहता हूँ। उनका पता मुझे बता दोगी?

क्षमा ने हथेली को उलटते हुए कहा—फ़जूल है। मैं जानती हूँ, वह लोग किसी तरह न राज़ी होंगे। और आप खुद समझ सकते हैं, कैसे राज़ी होंगे। उनके लिए यह रोटी-दाल का सवाल है। अगर आप कहें कि मैं ५०) हमेशा देता जाऊँगा, फिर भी वह न मानेंगे। आदमी का क्या एतबार? कल को आप न दें, या आपकी नौकरी छूट जाय, तो वह बेचारे किसके द्वार पर जायँगे?

यहाँ भी निराशा हुई। और अबकी मौन का पाँच मिनट तक राज्य रहा। तब क्षमा ने मृदु भाव से कहा—जब तक आपको चाय पिला दूँ, फिर न जाने कब यह अवसर आए।

जटाशंकर ने आँखों में आँसू लाकर कहा—इस वक्त तो मुझे दस-पाँच गालियाँ देकर दुत्कार बता दो, तो इससे कहीं अच्छा हो।

क्षमा ने विनोद भाव से कहा—इतने दिनों के बाद तो आप मेरे एक प्रेमी पैदा हुए, उसका यों अनादर कर दूँ?

'मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ क्षमा, थोड़ी देर के लिए गंभीर बन जाओ और मेरे एक प्रश्न का जवाब दो। तुम्हें कभी पा सकूँगा या नहीं, यह तो भाग्य की बात है; लेकिन तुम्हारे इस

जवाब से मुझे बड़ा संतोष मिलेगा। तुम्हें मुझसे प्रेम है या नहीं ?'

क्षमा ने सजल नेत्र होकर कहा—आपके लिए मैं अपने प्राण दे सकती हूँ !

जटाशंकर ने कुरसी से उठकर उल्लास भरे स्वरों में कहा—एक प्रश्न और। तुम वादा करती हो कि तुम्हारे प्रेम में मेरा यह स्थान स्वरक्षित रहेगा ?

क्षमा ने काँपते हुए स्वर में कहा—तुमने यह प्रश्न करके मुझे अपने भावों को प्रकट करने का बहुत अच्छा अवसर दे दिया, शंकर ! मैं रूपवती नहीं हूँ कि कोई मुझे देखते ही मरने लगे। न इतनी अल्हड़ ही हूँ कि कोई मुझे नक़ली प्रेम से पागल बना सके। कर्तव्य-पालन का सच्चा मूल्य समझनेवाले बहुत कम पुरुष होते हैं। उधर से भी कोई खटका नहीं है। तुम जैसे सहृदय और विचारशील पुरुष का प्रेम मेरे जीवन की सबसे दुर्लभ वस्तु है, और मैं तुमसे अन्तःकरण से कहती हूँ कि जब तक तुम मुझे खुद इस अधिकार से वंचित न कर दोगे, मैं तुम्हारे प्रेम को हृदय से लगाए रहूँगी। जब मैं जान जाऊँगी कि तुमने अपना विवाह कर लिया, तब रो-धोकर अपने मन को समझा लूँगी, और हृदय को चीर कर उस प्रेम को निकाल फेकूँगी। उसके पहले किसी तरह नहीं।

• • •

दिन बीतने लगे। क्षमा बार-बार पछताती कि उसने एक व्यर्थ की टेक के पीछे जटाशंकर को क्यों निराश कर दिया। मुंसिफ़ को चार-पाँच सौ मिलते होंगे। अगर बेचारा बड़ी किफ़ायत करे, तब कहीं पाँच साल

में दस हज़ार जमा कर सके। और रुपए लेकर उसे करना ही क्या है। अगर उसने जटाशंकर को दंड दे ही दिया, तो इससे दहेज़ की समस्या तो नहीं हल हुई जाती। उसने सोचा, क्यों न लिख दूँ, मेरे माता-पिता बिना दहेज़ के ही मेरा विवाह करने पर राज़ी हैं। क्यों न सारा वृत्तान्त साफ़-साफ़ लिख दूँ ? उनसे परदा ही क्या ? एक तमाशा था, वह हो गया। उधर वह तड़प रहे हैं, इधर मैं रो रही हूँ। एक-एक पल काटे नहीं कटता। बेचारे को न जाने कितनी तपस्या करनी पड़ेगी। इस पिछले पत्र को तो जान पड़ता है, आँसुओं ही से लिखा है। नहीं, यह नाटक अब समाप्त कर दूँगी।

उसने पत्र लिखने का निश्चय किया और मेज़ पर जा बैठी कि सहसा जटाशंकर का परिचित स्वर बरामदे में सुनाई दिया। वह बैरा से पूछ रहे थे—मिस साहब अन्दर हैं या नहीं ?

वह तुरंत बाहर निकल आई और बड़े तपाक से उनका हाथ पकड़कर कमरे में ले गई। जटाशंकर ने कुरसी पर बैठते ही कहा—मैं बड़ा भाग्यवान निकला, क्षमा ! एक लॉटरी में मुझे २५ हज़ार मिल गए हैं और मैं उसे तुम्हारे माता-पिता की भेंट करने आया हूँ। तुम्हें इसी गाड़ी से मेरे साथ चलना होगा। मैं यहाँ से गया तो बहुत निराश था। तुम्हें दिल में कितना बुरा-भला कहा। वह अब याद नहीं। महीने में एक पैसा तो बचता ही नहीं, दस हज़ार तो शायद दस साल में भी न जमा कर सकूँ ; लेकिन क़िस्मत आज़माने के लिये लॉटरी का एक टिकट ले लिया। पहले भी कई बार टिकटों पर पैसे गँवा चुका हूँ। कुछ आशा तो न थी ; पर ले ही लिया। कल तार से खबर आई, पचीस हज़ार

मिले, और उसके आध घंटे के बाद ही एलाहाबाद बैंक ने मेरे नाम उस रक़म का चेक भेज दिया। तो अब देर न करो। मैं चलकर माता जी के चरणों पर चेक रख दूँ और उनका मंगलमय आशीर्वाद माथे पर चढ़ाऊँ और वहीं हम दोनों प्रणय के अमर बन्धन में बँध जायँ।

यह कहते हुए उसने चेक निकालकर मेज़ पर रख दिया।

क्षमा ने उस पर एक उल्लास की दृष्टि डालते हुए कहा—मेरे जी में आ रहा है, अम्मा को यह रुपये न देकर ख़ुद रख लूँ; लेकिन पहले कपड़े-वपड़े तो उतारो, कुछ खाओ, आराम करो, फिर आराम से चलेंगे। नहीं, अम्माँ को यहीं क्यों न बुला लूँ? और सच्ची बात तो यह है कि वह सब मेरी शरारत थी, जिस पर मैं रोज़ पछताती थी।

जटाशंकर ने विस्मय से कहा—सच! उफ़! कितना गहरा चकमा दिया! कितनी निष्ठुर हो तुम! अगर यह लॉटरी न निकल आती, तो मैं तुम्हारी चौखट पर सिर पटकता रह जाता।

'निष्ठुरता पहले तुमने शुरू की।'

'मैंने!'

'जी हाँ, हुज़ूर ने! जिस बाल-विधवा से विवाह करने का तावान आप पाँच हज़ार माँग रहे थे, वह यही मिस क्षमा, या क्षमा देवी हैं!'

जटाशंकर ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया और बोला—ज़रा पंखा खोल दो क्षमा, मेरा सिर चक्कर खा रहा है। तुम्हें चाहिए था कि मुझ जैसे पशु को ठोकरें मार कर निकाल देतीं। आज मुझे अपनी नीचता का अनुभव हो रहा है और जी चाहता है कि तुम मुझे खंभे से बाँध कर एक हज़ार हंटर लगाओ। क़सम ले लो, जो मैं मुँह से एक

चीख भी निकालूँ। नहीं, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ क्षमा ! उफ़ ! तुम-जैसी स्वर्ग की देवी के साथ यह अन्याय !

क्षमा ने पंखा खोल दिया और उसके गले लिपटकर बोली—अब उन बातों को भूल जाओ शंकर ! उस वक़्त तक तुम ने स्त्री का मूल्य न समझा था और मुझे सेवा का अवसर न मिला था। वही बालिका जिसका तुमने तिरस्कार किया था, आज तुम्हारे गले लिपटी हुई है, यह उसके लिए परम सौभाग्य की बात है। मुझे तो आज उस तिरस्कार में भी आनन्द आ रहा है।

सिंदूर की रक्षा

शहर में आठ दिनों से हिन्दू-मुसलमानों में संग्राम छिड़ा हुआ है। बाज़ार बन्द है। आदमियों की जान के लाले पड़े हुए हैं।

मगर आज ही चंदा का विवाह है। बारात का स्वागत करने की तैयारियाँ हो रही हैं। मुसलमान कहते हैं—बाजे पर एक चोब न पड़ने देंगे, चाहे सौ-दो-सौ जानें भेंट करनी पड़ें! हिन्दू कहते हैं—रात-दिन बाजे बजेंगे, चाहे हज़ार-पाँच-सौ का बलिदान करना पड़े!

दोनों ही दलों ने स्त्रियों और बच्चों को सुरक्षित स्थानों में भेज दिया है। पुरुष ही पुरुष रह गये हैं। केवल चंदा के घर में स्त्रियाँ हैं; पर अपने ही घर की। संबंधियों के यहाँ से कोई स्त्री नहीं आई।

चंदा के बड़े भाई का नाम रामपालसिंह था। आकर माँ से बोले—

क्यों अम्मा, कहो तो तुम्हें और रामू की माँ को और कहीं पहुँचा दें। यहाँ अकेली चंदा रह जाय।

माँ ने वहू की ओर देखकर कहा—मेरी चिंता न करो। हाँ, वहू को कहीं पहुँचा दो, तो अच्छा हो।

रामू की माँ ने नाक सिकोड़कर कहा—क्या मेरी ही जान सबसे प्यारी है अम्माजी? या मैं ही सबसे कच्चे दिल की हूँ?

रामपाल तिनक कर बोले—यहाँ जानों की बात नहीं है और न बहादुरी की परीक्षा है। केवल इज़्ज़त की बात है।

'तुम अपनी बहन को देखो। मैं अपनी रक्षा आप कर लूँगी।'

'व्यर्थ की ज़िद करती हो। मुझे कष्ट दोगी और क्या। तुम चली जातीं, तो मुझे एक फ़िक्र से छुट्टी मिल जाती।'

'यहाँ एक तलवार लाकर रख दो और जाकर आराम से बैठो। जैसी सिर पर पड़ेगी, देखी जायगी। मैं उन नारियों में नहीं हूँ, कि घर के मर्द तो आग में कूदें, मैं दूसरी जगह जाकर बैठूँ।'

'अच्छा भाई, जो इच्छा हो करो। मेरा जो धर्म था, वह मैंने कह दिया!'

'मैं कहती हूँ, इसमें कौन-सी शेखी मारी जाती है कि आज ही बारात आवे। लड़केवालों को क्यों नहीं लिख देते कि इस समय परिस्थिति हमें विवाह को स्थगित करने पर मजबूर कर रही है?'

'इससे तो कहीं अच्छा है कि नाक कटवा लें!'

यह कहते हुए रामपालसिंह बाहर चले गये। उनकी माँ भी बारात की तैयारियाँ करने में लग गईं। वहाँ केवल बहू रह गई। उसी समय

चन्दा कोठे से उतरी और मन मारे भावज के सामने खड़ी हो गई।

बहू का नाम सुकंठा था। ननद से बोली—मुझसे कहने आये थे कि तुम्हें किसी दूसरी जगह पहुँचाये देता हूँ। मैंने कह दिया—मुझे कहीं नहीं जाना है। जब मर्द ही न रहेंगे, तो हमें जीकर क्या करना है!

चन्दा कुछ न बोली।

सुकंठा ने फिर कहा—नौज ऐसा ब्याह! ब्याह क्या है महाभारत है। आल्हा में भी इसी तरह बेला का ब्याह हुआ था। दोनों कुलों का नाश हो गया। संयोगिता के ब्याह में ऐसा ही संग्राम हुआ। न-जाने वह कैसी लड़कियाँ थीं कि अपने घरवालों का रक्त बहाकर माँग में सिंदूर डालती थीं। मैं तो विष खाकर प्राणों का अन्त कर देती। मुझसे तो बाप और भाई की हत्या न देखी जाती!

चन्दा के कलेजे पर चोट लगी। वह कई दिन से स्वयं इसी उधेड़-बुन में पड़ी हुई थी। कई दिनों से उसने भोजन तक न किया था; पर संकोच के मारे किसी से कुछ कह न सकती थी। अब न रहा गया। बोली—भाभी, अगर मेरे प्राणों की भेंट से यह संकट टल जाय तो मैं इसी दम प्राण दे दूँ; मगर लोग यही कहेंगे कि ठाकुरों ने मारे डर के लड़की को मार डाला। मैं अपने बाप और भाई के मुँह पर यह कलंक नहीं लगाना चाहती। हाँ, इतना कहे देती हूँ, कि जहाँ दादा और भैया के सिर कटेंगे, वहीं चन्दा का सिर भी कटेगा। यही मेरी प्रतिज्ञा है।

सुकंठा को अब भी बालिका पर दया न आई। बोली—यह समझ लो कि सैकड़ों माँगों का सिन्दूर धुलकर तुम्हारी माँग में पड़ेगा!

चन्दा का मुख आरक्त हो गया।

'मैं अपने रक्त से उनके सिन्दूर की रक्षा करूँगी।'

'तुम्हारे रक्त से सिन्दूर की रक्षा न होगी, बीबी। उसकी एक-एक बूँद एक-एक माँग को धो देगी।'

चन्दा ने सतेज होकर कहा—वीर नारियाँ अपने सिन्दूर की रक्षा अपने रक्त से करती हैं!

यह कहकर वह वहाँ से चली गई।

(२)

बारात आने का समय हो गया है। शहर भर के हिंदू और मुसलमान इसी मुहल्ले में फटे पड़ते हैं। सभी अपनी-अपनी जान हथेली पर लेकर निकले हैं। घरों में रोना-पीटना मचा हुआ है। कहीं अल्लाहो अकबर के नारे हैं, कहीं महावीर की जय-ध्वनि है। वीरों के दिल बढ़े हुए हैं। आज वे अपने कर्तव्य का पालन करने जा रहे हैं। स्त्रियाँ और माताएँ रो-रोकर उन्हें विदा कर रही हैं।। स्त्रियाँ पुरुषों के चरणों पर सिर रखकर ईश्वर से प्रार्थना करती हैं—तुम इनकी रक्षा करना। माताएँ बेटों को छाती से लगाकर आशीर्वाद देती हैं—बेटा सुर्खरू होकर आना, भगवान तुम्हारी रक्षा करे, जैसे पीठ दिखाकर जाते हो, वैसे ही मुँह दिखाना! और आँखों में आँसू भर सिर नीचा कर लेती हैं। पुरुषों का भी यही हाल है। हृदय में वीरता उमंगें मारती हैं; पर गले भरे हुए हैं और मुँह से शब्द नहीं निकलता। आँसू पोंछकर बाहर निकलते हैं। बाप बेटों को रोकता है, बेटे बाप को रोकते हैं। छोटे बच्चे रो-रोकर साथ जाने के लिए हठ कर रहे हैं, यह सच है; पर सभों पर नशा छाया हुआ है। हिन्दू कहता है—आज मुसलमानों का निशान मिटा

देंगे। मुसलमान कहता है, आज काफ़िरों से दुनिया को पाक कर देंगे।

इधर ज्योंही रामपालसिंह घर में से निकले, चन्दा भी सुहाग का जोड़ा पहने कोठे से उतरी और माता के चरणों पर गिर पड़ी।

माता ने हिम्मत से पूछा—तू कहाँ जाती है बेटी ? भला यह समय जाने का है।

चन्दा ने सिर झुकाकर कहा—जाती हूँ, बारात का स्वागत करने के लिए !

'क्या कहती है चन्दा, अपने होश में है या नहीं ? तुझे देखकर देश क्या कहेगा ? क्या कुल की नाक कटाने पर तुली हुई है ? जा, ऊपर बैठ।'

चन्दा ने सिर उठाया और सगर्व नेत्रों से माता की ओर ताकते हुए कहा—तुम क्या चाहती हो अम्मा कि मेरे पीछे सैकड़ों-हज़ारों बहनों की माँग का सिन्दूर धुल जाय, सैकड़ों-हज़ारों बालक अनाथ हो जायँ ? सैकड़ों-हज़ारों घर मिट जायँ ? मैं अपने रक्त से इस द्वेष और वैमनस्य की आग को शान्त करूँगी। मैं इतना बड़ा कलंक माथे पर लगाकर संसार में नहीं रह सकती। मैं इसी घर में अपना अन्त कर लेती; लेकिन मैं किसी को यह कहने का अवसर नहीं देना चाहती कि हिन्दुओं ने मारे डर के कन्या की हत्या कर डाली। मैं दोनों दलों के सम्मुख जाकर दिखा दूँगी कि हिन्दू बाला किस तरह नीति की रक्षा के लिए प्राण देती है।

रामपाल ने जाते-जाते चन्दा को जोड़ा पहने ऊपर से उतरते देख लिया था। वह बरोठे में खड़ा-खड़ा चन्दा की बातें सुनता रहा। जब

उसने देखा कि माता के रोके चन्दा रुकनेवाली नहीं, तो लौट पड़ा और चन्दा के सम्मुख आकर बोला—तुझे यह दिखाने का काम नहीं है, चन्दा! हिन्दू-बालाओं ने इसके पहले भी हज़ारों बार दिखा दिया है कि वह कितनी वीरता से प्राण दे सकती हैं, और न हिन्दू देवियों ने माँग के सिंदूर का कभी इतना मोह किया है। आन वह वस्तु है जिस पर सिरों की और सिंदूर की भेंट सदा चढ़ती रही है, और सदा चढ़ती रहेगी।

चंदा ने दबी ज़बान से कहा—आखिर यह उपद्रव मेरे ही कारण तो हो रहा है!

रामपाल ने ठट्ठा मारकर कहा—तेरे कारण नहीं हो रहा है पगली, इसके कारण कुछ और हैं। यह तो केवल एक बहाना है। मुसलमान हमारे ऊपर आतंक जमाकर हमें दबा देना चाहते हैं और इसीलिए वह हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जीवन के मर्मस्थानों पर चोटें कर रहे हैं। हमें दिखा देना है कि हिन्दू अपने स्वत्वों को आसानी से छोड़नेवाले नहीं और ज़रूरत पड़े, तो उनकी रक्षा अपने रक्त से कर सकते हैं।

रामपालसिंह बाहर चले गये। अंदर से किवाड़ बंद कर लिये।

सारा मुहल्ला पुरुषों से खाली हो गया था। लोगों ने समझा था, मुसलमानों से स्टेशन के सामने मैदान में मुठभेड़ होगी। वही युद्ध-क्षेत्र निश्चित-सा था। किसी को यह सुधि न रही कि उपद्रवों में धर्म-युद्ध की नीति नहीं काम करती। रामपालसिंह और उनके दल को गये अभी दस मिनट भी न हुए थे कि मुसलमानों का दल न-जाने किधर से आ पहुँचा और रामपालसिंह के मकान को चारो तरफ़ से घेर लिया। मुहल्ले

में एक भी मर्द न था। सभी घरों के द्वार बंद थे। भीषण परिस्थिति थी। उपद्रवों में धर्म की आड़ में लूट-मार करनेवाले ही अधिक होते हैं। यह एक हज़ार गुंडों का दल किसी गुप्त स्थान में छिपा हुआ मर्दों के निकल जाने का अवसर देख रहा था। मैदान ख़ाली था। अगर शोर-गुल मचा भी, तो जब तक वह लोग आधे रास्ते से लौटें, यहाँ गुंडों को अत्याचार करने का बहुत समय मिल जायगा। दस-दस पाँच-पाँच के जत्थे हरेक द्वार पर पहुँच गये और किवाड़ों को तोड़-तोड़ कर अंदर घुस जाने का प्रयत्न करने लगे। घरों में देवियाँ अपने बालकों को गोद में लिये खड़ी राम-राम कर रही थीं। धन की किसी को चिंता न थी। प्राणों की भी उतनी चिंता न थी। चिंता थी अपने सत्य के भंग हो जाने की। देवी-देवताओं की मनौतियाँ की जा रही थीं—कहीं भागकर चली जायँ!

चन्दा की माँ ने सिटपिटाकर कहा—यह दुष्ट किधर से आ पहुँचे? वेहयाओं को लाज भी नहीं आती कि यहाँ कोई मर्द नहीं है, स्त्रियों से क्या बोलें!

बहू ने बालक को छाती से लगाये हुए सहमकर आकाश की ओर देखा और बोली—अब क्या होगा अम्मा? एक छन में केवाड़ टूट जायँगे, और दुष्ट घर में घुस आयेंगे।

सहसा चन्दा एक कटार लिए हुए कोठरी में से निकली और माता से बोली—अम्मा, मैं कोठे पर जाकर छज्जे से इन लोगों को शान्त करने की चेष्टा करती हूँ। या तो उन्हें यहाँ से हटा ही दूँगी; या वहीं अपने प्राणों का अन्त कर दूँगी।

माता ने उसका हाथ पकड़कर कहा—अरी बेटी तू किस भ्रम में है ? दुष्ट भला तेरी कोई बात सुनेंगे !

'तो यह कटार तो मेरे पास है ही।'

'और जो सब-के-सब घर में घुस आये ?'

'तो आप लोगों के लिए सब से सुरक्षित स्थान यह कुआँ है। मोह को छोड़िये। यह प्राण देने का समय है। कुएँ की जगत पर खड़े होकर उनसे कह दीजियेगा, तुम्हें धन की चाह हो तो घर खुला है, जो चाहे ले लो ; लेकिन हमारे समीप न आना। तुम इधर बढ़े और हम कुए में कूदे। बस !'

यह कहकर चन्दा कटार लिये कोठे पर चढ़ गई और छज्जे पर खड़ी होकर ऊँचे स्वर में बोली—प्यारे भाइयो ! आपकी क्या इच्छा है ? क्या आपकी जवाँमर्दी इसी में रह गई है कि असहाय स्त्रियों पर हमला करें ?

आक्रमणकारियों ने देखा, एक बाला हाथ में कटार लिये, सुहाग की साड़ी पहने, तेजस्विता की मूर्ति-सी सामने छज्जे पर खड़ी है। सब-के-सब एकटक उसकी ओर ताकने लगे। दूसरे द्वारों पर से भी कुछ लोग यह दृश्य देखने के लिए दौड़ आये।

एक ने कहा—कितनी भोली औरत है !

'जी चाहता है, उठाकर कलेजे में रख लें।'

'इसी की शादी होने वाली है !'

'अब इससे हमारी शादी होगी !'

चन्दा ने यहाँ से कोई जवाब न पाकर फिर उसी स्वर में कहा—

अगर आप लोग हिन्दू नारियों के धैर्य और साहस की परीक्षा लेने आये हैं, तो शान्ति-पूर्वक खड़े रहिये। हम अपने हाथों अपने सिर आपकी भेंट कर देंगे ; क्योंकि मुझे विश्वास नहीं आता कि कोई बहादुर आदमी औरतों पर हाथ उठायेगा। मैंने इसी मुहल्ले में आपही लोगों को शादियों के नवेद में आते देखा है। जब कोई बारात बाहर से आती थी, तो आप घरातियों के साथ बारातियों का स्वागत और सेवा-सत्कार करते थे। हम अब भी वही हैं। आप भी वही हैं। फिर यह ग़ैरियत कैसी? नगर के नाते से आप हमारे भाई हैं। मैं आपकी बहन हूँ। भाई क्या बहन का दुश्मन होता है? भाई की लाग-डाट भाई से होती है। बहन तो दोनों के लिए बराबर है। आप में बहुत से भाई पढ़े-लिखे शरीफ़ हैं। मैं उन्हीं से पूछती हूँ, क्या इसी को शराफ़त कहते हैं कि असहाय औरतों की आबरू बिगाड़ी जाय? हम आप से यह आशा रखते हैं कि कोई हमारे साथ बेजा बर्ताव करे, तो आप हमारी रक्षा करें। जब आप ही की नीयत ख़राब हो जाय, जब भाई अपनी बहन की आबरू लेने पर उतारू हो जायँ, तो बहन के लिए आत्महत्या के सिवा और क्या रह जाता है? बोलिये, क्या मंज़ूर है? यह कटार आप के जवाब का इन्तज़ार कर रही है।

एक नौजवान ने विवाद के स्वर में कहा—हिन्दुओं ने हमारे साथ क्या उठा रखा है कि हम उनके साथ भाई-चारा निभाएँ?

दूसरे आदमी ने उसका समर्थन किया—कई मुहल्लों में हिन्दुओं ने हमारी बहनों के ऊपर हमले किये।

चन्दा ने शान्त चित्त से कहा—अगर हिन्दुओं ने ऐसा किया, तो

बुरा किया, बहुत बुरा किया, वह किया जो नीचों का काम है। अगर मेरा बस होता तो मैं ऐसे हिन्दुओं के मुँह में कालिख लगा कर शहर से निकलवा देती, चाहे उनमें हमारा भाई ही क्यों न होता; लेकिन ऐसी शिकायतें हिन्दुओं की तरफ़ से भी हो सकती हैं; शायद हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की किसी ऐसी ही ज्यादती का बदला लिया हो। अगर यह सिलसिला योंही चलता रहा, तो एक भी मुसलमान या हिन्दू स्त्री की आबरू न बचेगी, इससे तो यह कहीं अच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान मरदों का अन्त हो जाय। औरतें उनके नाम को रो लेंगी।

मुसलमानों का वह अन्धा उन्माद कुछ शान्त हो गया। भीड़ में सब-के-सब कमीने ही नहीं होते। हाँ, समूह की मनोवृत्ति उन्हें अपने साथ बहा ले जाती है; पर उनकी आत्मा में यह भाव बना रहता है कि हम अन्याय कर रहे हैं। ऐसों पर न्याय और सद्भाव की अपील कुछ-न-कुछ असर अवश्य करती है।

एक आदमी ने अपने दलवालों से कहा—औरत इन्साफ़-पसन्द मालूम होती है!

दूसरे आदमी ने दूसरा ही भाव प्रकट किया—इन्साफ़-पसन्द नहीं है, चकमा दे रही है!

तीसरे आदमी ने इसका विरोध किया—चकमा क्या दे रही है? अगर इसी तरह हम दोनों औरतों की आबरू पर हमले करते रहे, तो क्या नतीजा होगा? किसी की बेटी-बहन की आबरू सलामत रहेगी? तुम्हारे तो न बहू है, न बेटी। तुम इसका मतलब क्या समझोगे!

पहला—बहादुर औरत है!

दूसरा—नमकीन भी तो है !

तीसरा—तुम बेहूदे हो !

पहला—इतना सुन लेने पर तो अब कुछ करने का जी नहीं होता।

दूसरा—सूरत पर लट्टू हो गये !

तीसरा—हमारे लीडर आग लगाकर खुद अलग खड़े तमाशा देखते हैं।

पहला—मुफ़् की दुश्मनी। पूछो, हम भी ग़ुलाम, तुम भी ग़ुलाम, फिर क्यों लड़े मरते हो ?

दूसरा—हम हिन्दुओं की ग़ुलामी हरगिज़ न करेंगे।

तीसरा—हमारी लड़ाई मरदों से है, औरतों से नहीं।

उधर हिन्दुओं को आधे रास्ते में खबर मिली कि मुसलमानों ने मुहल्ले पर चढ़ाई कर दी। सब-के-सब लौट पड़े। उस वक्त समूह दस हज़ार के ऊपर पहुँच चुका था। ऐसा मालूम होता था कि कोई घटा उमड़ी चली आती है। बात-की-बात में लोग इस मुहल्ले के समीप आ पहुँचे।

मुसलमानों ने यह विराट जन-समूह देखा तो हाथ-पाँव फूल गये। कहीं भागने का रास्ता नहीं। एक पतली गली थी; पर उससे भागना मुश्किल था। सब-के-सब सिमटकर रामपाल के द्वार पर इस समूह से निबटने को तैयार हो गये। मृत्यु प्रत्यक्ष सामने खड़ी नज़र आती थी; पर उससे बचने का कोई उपाय न था। दस-दस पाँच-पाँच आदमी उसी पहली गली से सरकते भी जाते थे। हिन्दुओं का वह समूह सामने आ पहुँचा। मुसलमानों के कलेजे सूखे जाते थे। जिन लोगों ने चंदा

की बातों में आकर सज्जनता प्रकट की थी, उन पर चारों ओर से आक्षेप होने लगे।

'अब फ़रमाइए, मरे कुत्तों की मौत या नहीं ?'

'अब तक तो अपना काम करके हम लोग कब के घर पहुँचे होते।'

'औरत की सूरत देखी और लोट पड़े। गले पर छुरी चलेगी, तब मिज़ाज़ दुरुस्त होगा !'

हिन्दुओं का उन्मत्त दल सिर पर आ पहुँचा और भीषण संग्राम छिड़ा ही चाहता था कि सहसा चन्दा अपने छज्जे से बोली—देखो ! देखो ! मेरे हाथ में कटार है। अगर किसी भाई ने मुसलमान भाइयों पर वार किया, तो यह कटार मेरी गरदन पर होगी।

रामपालसिंह ने चिल्ला कर कहा—तू जाकर घर में बैठ, क्यों हमारी नाक कटवा रही है ?

चन्दा बोली—अगर मैं घर में बैठी होती तो अब तक इस मुहल्ले से आग की लपटें उठती होतीं और आप लोगों की माताएँ और बहनें उसी चिता पर बैठी होतीं। मैंने अपने मुसलमान भाइयों से अपील की और उन्होंने मेरी अपील सुनी, उस नेकी का यही बदला है, जो आप उन्हें देने जा रहे हैं ? द्वेष में कोई किसी की पूजा नहीं करता। दोनों भाइयों ने जहाँ तक बन पड़ा, एक दूसरे का अनहित किया, धन लूटा, अपमान किया, आग लगाई, बेइज्ज़ती की। एक-दूसरे पर इलज़ाम मत रखिये। ताली दोनों हाथों से बजती है ; पर इस अवसर पर मुसलमानों ने मैदान खाली पाकर भी जो सज्जनता दिखाई, उसके प्रसाद से इसी स्थान पर दोनों भाई गले मिलिये और निश्चय कर लीजिए कि आगे

से आपस के मामले पंचायत से तय करेंगे। इसी में दोनों का कल्याण है।

जादू का-सा असर हुआ। भीड़ का मन बदलते देर नहीं लगती। वही जो एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे, भाइयों की भाँति गले मिले और कुछ देर के बाद जब हिन्दू दल फिर बारात का स्वागत करने चला, तो मुसलमानों का समूह भी उनके साथ था। सारे शहर में चन्दा की कीर्ति गूँज रही थी।

निराला नाच

खलकसिंह होली में बड़ा दुन्द मचाते थे। शराब पीकर द्वार-द्वार कबीर गाते, सबसे भाभी का नाता जोड़कर दिल्लगी करते और पन्द्रह दिन पहले ही से दस-पाँच लौंडों को लेकर औरतों पर रंग डालने लगते। बेचारियों का घर से निकलना मुश्किल हो जाता। ऐसी-ऐसी भद्दी गालियाँ और फक्कड़ बकते कि कान के कीड़े मर जाते; लेकिन वह गालियाँ गीत और कबीर के रूप में होतीं; इसलिए हँसी में उड़ जाती थीं। आखिर स्त्रियों ने आपस में सलाह की कि इन महाशय को ठीक करना चाहिए। ऐसा उल्लू बनाया जाय कि सारी शरारत भूल जाय।

शकुन्तला ने कहा—आज मैं घर से निकली तो ऐसी पिचकारी मारी, कि सारे कपड़े सराबोर हो गये।

आशा देवी बोलीं—अभी होली दस दिन पड़ी है, पर इसने अभी से हुड़दंगा शुरू कर दिया।

सुभद्रा इनकी मुखिया थी। खलकसिंह से छोटी थी; पर आज खलकसिंह ने उसके मुँह में गुलाल मल दिया था, दूर से नहीं फेंका, मुँह में मल दिया!

शकुन्तला ने सुभद्रा से पूछा—तो क्या उपाय सोचा है तुमने, सुभद्रा?

सुभद्रा—होली के दिन बताऊँगी।

'तब तक इसे हुड़दंगा मचाने दिया जाय?'

'हाँ, मचाने दो।'

'कितना ही हाथ-पैर जोड़ो, मानता ही नहीं।'

'दूसरे मर्द भी तो खुश होते हैं!'

'अपने घर वाले तक तो बोलते नहीं। कहते हैं, होली में सब माफ़ है।'

• • •

आज होली की रात है। मरदों ने सारे दिन कीचड़, रंग, अबीर, गुलाल उड़ाया है और बारह बजे रात तक चौताल और फाग गाने के बाद सो रहे हैं। किसी ने एक नशा जमाया है, किसी ने दो, किसी ने तीन। खलकसिंह इसी प्रथम श्रेणी में हैं। आज उनकी सूरत देखते ही बनती थी। जैसे कोई मछली मसाले में सौन दी गई हो। और गालियाँ तो आज उन्होंने इतनी बकी हैं, औरतों को ऐसे-ऐसे कबीर सुनाए हैं, कि बेचारी मारे लाज के पानी-पानी हो जाती थीं। उन्हें कबीर जोड़ना भी आता है। एक-एक के नाम से कबीर बनाते हैं।

रात के तीन बजे होंगे। सारे गाँव में सन्नाटा छा गया है। मर्द नशे में चूर सो रहे हैं। स्त्रियाँ जिन्हें दिन-भर पकवान पकाने और होली खेलने आनेवालों की खातिर करते बीता था, अब इतमीनान से भोजन करके लेटी थीं, कि यकायक खलकसिंह के द्वार पर कई आदमी आकर खड़े हो गए और केवाड़ खटखटाने लगे।

खलकसिंह की पत्नी ललिता ने उन्हें झकझोरकर कहा—देखो कोई द्वार खट-खटा रहा है।

खलकसिंह ने बड़ी मुश्किल से आँखें खोलकर कहा—जाकर देखो कौन है। मुझसे तो नहीं उठा जाता।

'इतनी रात गये मैं जाऊँगी केवाड़ खोलने ? कौन है, कौन नहीं ! तुम्हें मुझसे यह कहते शर्म भी नहीं आती !'

'तुम बड़ी बेरहम हो ललिता ! कहता हूँ, मुझसे उठा नहीं जाता। उठा भी तो गिर पड़ूँगा। मेरी रानी, ज़रा खोलकर देख लो !'

'मुझे डर लगता है। इतने ज़ोर से भड़भड़ा रहा है कि केवाड़ तोड़ डालेगा।'

'वाह रे डर ! मैं तो जाग ही रहा हूँ। इतनी रात गये कौन साला आया है ! कुशल चाहती हो तो जाकर देख आओ। मैं उठा तो दो-एक की खबर लिये बिना न मानूँगा।'

ललिता ने कानों पर हाथ रखकर कहा—ना भैया, मैं न जाऊँगी। मुझे तो मालूम होता है, कई आदमी हैं। सब बातें कर रहे हैं।

'अच्छा तो फिर मैं ही जाता हूँ। फिर न कहना कि मार-पीट क्यों की ?'

अपना मोटा डंडा उठाकर ठाकुर साहब लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते द्वार पर आये और केवाड़ खोलते हुए बोले—कौन साला केवाड़ भड़-भड़ा रहा है ?

बाहर से आवाज़ आई—साले नहीं हैं, तुम्हारे बहनोई हैं ; केवाड़ तो खोलो।

खलकसिंह ने केवाड़ खोला तो देखा कोई बीस आदमी मुँह पर नक़ाब डाले डण्डे लिये खड़े हैं। काटो तो खून नहीं। सारा नशा हिरन हो गया। समझ गए डाकू हैं। अब जान की खैरियत नहीं।

डाकुओं के नेता ने हुक्म दिया—इसे पकड़ कर मुश्कें बाँध दो, और तुमसे कहते हैं खलकसिंह ! अगर मुँह से एक शब्द भी निकाला तो जीभ काट ली जायगी। आज इस गाँव में हमारा पड़ाव है। पुत्तन का नाम सुना है न, हम उसी गिरोह के आदमी हैं। आज होली है। हमारी औरतें यहाँ से एक हज़ार कोस पर हैं। हमारे सरदार पुत्तन खाँ ने हुक्म दिया है कि इस गाँव से २५ सिपाहियों के लिए २५ औरतें पकड़ लाओ। सारी दुनिया होली मना रही है। क्या हमारी होली यूँही जायगी ? तुम इस गाँव के मुखिया हो। तुम्हें तीन औरतें देनी पड़ेंगी। बोलो, स्वीकार है ?

खलकसिंह के घर में तीन औरतें थीं—स्त्री, बहन और विधवा भावज। ज़रूर किसी गाँव के आदमी ने भेद दिया है, नहीं इसे घर की औरतों की संख्या कैसे मालूम होती ; मगर इस प्रस्ताव से ही उनका खून खौल उठा।

कड़ककर बोले—मैं इस गाँव का मुखिया नहीं हूँ।

सरदार ने कहा—झूठ बोलता है साला! इसके घर से चार औरतें निकालो।

खलकसिंह अपने को छुड़ाने की कोशिश करके बोले—मेरे घर में चार औरतें कहाँ हैं?

'तब कितनी औरतें हैं?'

'तुमसे क्या मतलब? पचास हैं।'

'तो पचासों को ले चल! हमारा एक-एक सिपाही दो-दो रखेगा!'

यह कहता हुआ वह घर में घुसा। उसके साथ के आदमी भी खलकसिंह को पकड़े हुए अन्दर पहुँचे।

सरदार ने कहा—इस घर में जितनी औरतें हों, सब अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर इसी दम निकल आवें और हमारे साथ चलें; नहीं हम ज़बरदस्ती निकाल ले जायँगे। हमारे साथ जाने में कोई तकलीफ़ नहीं होगी। बस घंटे-दो-घंटे हमारा मनबहलाव करके चले आना होगा। डरने की कोई बात नहीं। हम मरदों के दुशमन हैं, औरतें हमारे प्रेम की वस्तु हैं।

तीन औरतें गहने-कपड़े से लैस थीं ही। आकर सिर झुकाए आँगन में खड़ी हो गईं।

खलकसिंह आपे से बाहर होकर बोले—तुम सब क्यों निकल आईं? अन्दर जाकर केवाड़ बन्द कर लो और पीछे की खिड़की खोलकर गाँव-वालों को पुकारो।

डाकू-सरदार बोला—खबरदार जो कोई एक क़दम भी हिलीं, नहीं खलकसिंह की खैरियत नहीं। अगर किसी ने शोर मचाया तो अपनी

इज़्ज़त खोएगा। हम बीस जवान हैं, हथियार-बन्द। गाँव वाले हमारा कुछ नहीं कर सकते। हम किसी के साथ बुराई नहीं करना चाहते, जब तक हम मजबूर न हो जायँ।

खलकसिंह ने दाँत पीसकर चीखा—भले आदमियों की इज़्ज़त बिगाड़ना चाहते हो, उस पर कहते हो हम किसी के साथ बुराई नहीं करना चाहते?

'अगर औरतों के साथ विहार करने से तुम्हारी इज़्ज़त बिगड़ती है, तो तुम रोज़ अपनी इज़्ज़त बिगाड़ते हो।'

'मैं दूसरों की औरतों से नहीं बोलता।'

'औरतें तो दूसरों के घर से ही आती हैं।'

'हम ब्याहकर लाते हैं।'

'हम भी दो घंटे के लिए ब्याह कर लेंगे।'

'यह व्यभिचार है।'

'तुम करते हो तो व्यभिचार नहीं, हम करें तो व्यभिचार है।'—यह कहकर डाकू-सरदार ने तीनों औरतों को साथ चलने का हुक्म दिया, और तीनों क्षत्राणियाँ चुप-चाप तैयार हो गईं। खलकसिंह दाँत किट-किटाकर बोले—अरी कुलच्छनीओ, छाती में छुरी भोंककर मर क्यों नहीं जातीं? क्यों दौड़कर कुएँ में नहीं कूद पड़तीं? तुम्हारी माताओं ने कैसी वीरता से अपनी लाज बचाई थी? क्या तुम्हारा इतना पतन हो गया! तुम इन दुष्टों के साथ जाने को तैयार हो, कुलटाओ! निर्लज्जो!

ललिता ने सहमे हुए स्वर में कहा—यह लोग तुमको पकड़ ले जायँगे।

खलकसिंह जोश से बोले—मुझे पकड़ ले जायँ कुछ ग़म नहीं। मुझे मार डालें, कुछ ग़म नहीं। तुम्हारी लाज मेरे प्राणों से कहीं अमूल्य है।

डाकू-सरदार ने तीन जवानों को इशारा किया। तीनों लपककर स्त्रियों के पास पहुँच गये और उनसे प्रेमालिंगन और चुम्बन करने लगे। खलकसिंह लाल लोहे की भाँति पिघल कर पानी हो गये। ठकुराई फ़ेल हो गई। घिघियाने लगे। हाथ जोड़कर बोले—सरदारजी, हमारी इज्जत मत बिगाड़िए। भगवान् चाहेंगे तो इस धर्म का आपको बहुत बड़ा फल मिलेगा। मेरे घर में जो कुछ है वह ले लीजिए, एक-एक तिनका उठा ले जाइए। लेकिन औरतों को छोड़ दीजिए। मर जाऊँगा सरकार, कहीं मुँह दिखाने लायक़ न रह जाऊँगा!

सरदार हँसा—तुम चाहते हो दया और धरम के पीछे हम अपनी होली छोड़ दें। हम ज़्यादा-से-ज़्यादा इतना कर सकते हैं कि दो औरतों को छोड़ दें; मगर एक को तो ले ही जायँगे। एक को ब्रह्मा के कहने से भी नहीं छोड़ सकते। जल्दी बोलो!

'इससे तो अच्छा है गोली मार दीजिए, सरकार!'

'चुप रहो, हमारी बात का जवाब दो।'

'सरकार......'

'चुप रह! हमारी बात का जवाब दे।'

खलकसिंह ने विधवा भाभी की ओर देखा—भाभी, तुम घंटे-भर के लिए इनके साथ चली जाओ। अपनी बहनों की लाज बचाओ। एक के पीछे दो की जान बचती है। इनके साथ कोई कष्ट न होगा।

भाभी ने ऐंठकर कहा—तो अपनी बहन को क्यों नहीं भेज देते ? मुझे आराम नहीं चाहिए ? अच्छे आए। जैसे मैं ही सस्ती हूँ।

खलकसिंह ने विनीत स्वर में कहा—यह आपद-धर्म है भाभी, इसका खयाल करो। चम्पा (बहन) का अभी व्याह होना है।

भाभी ज़रा भी न पसीजी—इन्हीं में-से किसी के साथ व्याह कर देना, क्या हरज है ?

सरदार बोला—हम किसी के साथ व्याह नहीं करते। बस घंटे-दो-घंटे रखकर बहुत-सा रुपया देते हैं और चले जाते हैं।

खलकसिंह ने चम्पा की ओर देखा—चम्पा, कहते लाज आती है; पर इस संकट को किसी तरह टालना होगा।

चम्पा सरोष बोली—क्या कहते हो दादा ! तुम्हें लाज नहीं आती ?

'लाज तो ऐसी आ रही है कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ ; लेकिन यह विपत्ति कैसे टलेगी ?'

'ललिता भी तो खड़ी है। उससे क्यों नहीं कहते ?'

खलकसिंह ने ललिता की ओर न देखा, न उससे कुछ कहा। सरदार से बोले—हुजूर ने देख लिया, मैं कह-सुनकर हार गया। अब मेरा कोई बल नहीं। आप जो चाहें करें।

'तूने अपनी स्त्री से क्यों नहीं कहा ?'

'अगर हुजूर के घर में बीवी है, तो मुझसे यह प्रश्न न कीजिए।'

सरदार ने देवियों की ओर देखकर कहा—अच्छा देवियो, मैंने तुम्हें छोड़ दिया। मैं तुम्हें ज़बरदस्ती न ले जाऊँगा। मुझे तुम्हारे ऊपर

दया आती है। शर्त यही है कि तुम एक लँहगा और चुनरी लाकर खलकसिंह को पहना-ओढ़ा दो और यह यहीं नाचें। हम सब इनका नाच देखकर ही अपनी होली मना लेंगे।

तीनों देवियाँ प्रसन्न होकर लँहगा और चुनरी लाईं और खलकसिंह को पहना दिया। सब जवान हँसते और तालियाँ बजाते थे और खलकसिंह रोते थे, ज़ोर-ज़ोर से पुक्का फाड़कर।

सरदार ने कहा—चूड़ियाँ भी लाओ।

मगर ठाकुर के हाथ की चूड़ियाँ वहाँ न मिलीं।

सरदार—अच्छा सेंदुर लाकर इसकी माँग में डाल दो।

ललिता ने सेंदुर लाकर पति की माँग भर दी। ठाकुर साहब छाती पीट कर रो पड़े।

सरदार—क्यों रोते हो दोस्त! एक दिन तुमने भी तो इस देवी की माँग में सेंदुर डाला था। वह तो इस तरह न रोई थी। शायद खुश हुई थी।

खलकसिंह रोते हुए बोले—सरकार, इससे तो कहीं अच्छा था कि मुझे गोली मार देते।

ललिता हँसी रोकती हुई बोली—तो इतना रोते क्यों हो? तुम्हीं तो कहा करते थे, औरतें दिन भर आराम किया करती हैं। अब आराम करो न।

खलकसिंह चिनगारी-सी आँख निकालकर बोले—यह कब की कसर निकाल रही हो ललिता!

'कसर क्या निकाल रही हूँ? एक छन के लिए औरत बन जाने में

तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? हमारी जान बचती है। तुम्हें तो खुश होना चाहिए था। हाँ मूँछों पर चुँदरी कुछ खिलती नहीं।'

सरदार ने डाँटा—अच्छा आपस में मत लड़ो। अब तुम्हारा नाच होगा खलकसिंह !

'सरकार, दया कीजिए !'

'हम कुछ नहीं सुनना चाहते। तुम्हें नाचना होगा।'

आँगन में लालटेन तो जल ही रही थी। खलकसिंह नाचने लगे। अब तक उन्होंने दूसरों को बनाया था, आज दैव की लीला थी कि वह खुद बनाए जा रहे थे। पहले तो एक मिनट तक वह बुरी तरह झेंपते रहे, फिर खुलकर नाचने लगे। जितना उछलते-कूदते बना उछले, कूदे, हाथ मटकाए, आँखें नचाईं, भाव बनाए ! वह दिखाना चाहते थे, हम मर्द हैं और संकट पड़ने पर भी प्रसन्न रह सकते हैं।

उसी वक़्त जवानों ने अपने नक़ाब और ढाठे और पगड़ियाँ उतार दीं।

ठाकुर साहब ठक रह गए। यह सब उसी गाँव की महिलाएँ थीं। उन्होंने पहचाना—शकुन्तला, सुभद्रा, आशा, सुखदा !

शकुन्तला ने ताली बजाकर कहा—हाँ-हाँ नाचे जाओ, ज़रा घूम कर। देख ली तुम्हारी ठकुराई !

ख़लकसिंह कुछ न बोले, लपककर अपनी कोठरी में घुस गए और अन्दर से केवाड़ बन्द कर लिए।

विश्वास

मुन्शी शम्भूनाथ को माया के विवाह की बड़ी चिन्ता थी। मरने के पहले कन्यादान का पुण्य ले लेना चाहते थे। मुन्शी जी की तीन पुश्तों में कोई कन्या हुई ही नहीं। देवताओं की बहुत मनौतियाँ करने के बाद पोती मिली थी। उनके पुत्र दीनानाथ को यह कन्या-रत्न मिला था।

दीनाबाबू ने बाप का प्रस्ताव सुनकर कहा—आप को भी ख़ूब सूझी। अभी उसका नौवाँ साल है।

मुन्शी बोले—बेटा, मेरा अब कौन भरोसा। पका हुआ आम हूँ। क्या तुम चाहते हो, मुझे कन्यादान का पुण्य भी न मिले!

दीनानाथ पिता के भक्त थे। चुप हो गये, मगर दुधमुँही लड़की के विवाह की कल्पना ही हास्यास्पद थी।

मुन्शी जी ने बेटे के मन का भाव ताड़ कर कहा—इसे मेरी बेवक़ूफ़ी ही समझो; मगर मैं आशावादी हूँ और ईश्वर पर भरोसा रखता हूँ। किसी तरह की शङ्का मत करो। मेरी माया जहाँ जायगी सुखी रहेगी।

दीनाबाबू बोले—जैसी फिर आपकी आज्ञा।

माया दौड़ी आई और मुन्शी जी की पीठ पर बैठकर उनकी दोनों आँखें बन्द करती हुई बोली—मैं कौन हूँ, बूझो?

मुन्शी जी ने हँसकर कहा—तू मेरी रानी बेटी माया है!

आज किसी सहेली ने माया के नाम की हँसी उड़ाई थी। वह बात माया के मन में खटक रही थी। दादा की गोद में बैठकर बोली—दादा जी, मेरा नाम किसने माया रख दिया?

मुन्शी जी हँस कर बोले—बेटी, यह नाम मैंने रखा है। बहुत दिनों तक माया देवी की पूजा की कि मेरे घर आकर उसे पवित्र करें। जब देवी जी ने मुझे वरदान-स्वरूप तुझको दिया, तो मैंने तेरा नाम माया रखा।

माया प्रसन्न होकर बोली—तो दादा जी, मैं भी क्या देवी हूँ?

मुन्शी जी उसे गले लगाकर बोले—हाँ, तुम देवी हो। हम हिंदू लोग कन्या को देवी ही के रूप में देखते हैं।

(२)

दीनाबाबू बाहर से आये और एक फ़ोटो पिता के हाथ में रखकर बोले—बड़ा होनहार लड़का है, और कितना रूपवान!

मुन्शी जी फ़ोटो देखकर बोले—हाँ, लड़का अच्छा है, लेकिन मेरी माया कौन कम है!

माया ने मुन्शी जी के हाथ से फ़ोटो छीन लिया और बोली—दादा जी, यह फ़ोटो मैं लूँगी। मैं इससे अपना ब्याह करूँगी।

दादा ने विनोद किया—क्या करेगी बेटी ब्याह करके?

माया ने अपने मामा जी की बेटी ललिता का ब्याह देखा था। खूब बाजे बजे थे। अच्छे-अच्छे कपड़े-गहने आये थे और बहुत-सी मिठाइयाँ बनी थीं। वह धूम-धाम खूब अच्छा लगता था। फिर वह क्यों न अपना विवाह करे?

मुन्शीजी हँसकर बोले—बेटी, ललिता को तो वह सब अपने घर ले गये। कहीं तुझे भी घर ले गये, तो मैं क्या करूँगा?

माया कुछ चिन्तित होकर बोली—तो फिर रहने दो, मैं नहीं लूँगी कुछ भी। फिर कुछ सोचकर बोली—तो दादा जी, सब चीज़ें लेकर घर में रख लेना और सबों को मार कर भगा देना, दरवाज़ा बन्द कर लेना, अच्छा।

मुन्शी जी बोले—बेटी, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, कैसे उनको जीतूँगा?

माया ने सारा प्रोग्राम सोच लिया था। दादा जी और बाबू जी, और दादा जी और अम्माँ जी सब लोग रात को चलेंगे और सारा सामान लेकर रात को भाग आवेंगे। किसी को खबर न होगी।

मुन्शी जी की आँखों के सामने बिदाई वाला दृश्य आ गया। बड़े प्रेम से माया को छाती से लगा कर उसका मुख चूमा और आँखों में आँसू भरे बाहर चले गये।

माया सबको वर की फ़ोटो दिखाती थी और खुश थी, इससे उसका ब्याह होगा। उसके साथ खूब खेलेगी। और उसकी माँ और दादी उसके भोलेपन पर रोती थीं।

(३)

आज माया का व्याह है। बाजे बज रहे हैं। धूम-धाम है। माया बड़ी खुश.........

बाहर से दीनानाथ आकर माँ से बोले—अम्मा, हम लोग बारात लेने स्टेशन जाते हैं।

माँ ने कहा—जाओ, मगर देखो माया न देखने पाये, नहीं तो वह भी चलने को तैयार हो जायगी।

तब तक माया खुद ही आ गई और पिता को कहीं जाने के लिए तैयार देखकर बोली—बाबू जी, मैं भी आपके साथ चलूँगी।

दीना बाबू हँसकर बोले—बेटी, तू कहाँ जायगी मेरे साथ। मैं घूमने नहीं जाता, काम से जाता हूँ।

'मैं तो चलूँगी।'

'वहाँ फ़ौज आई है। तुमको पकड़ ले जायगी। मैं तो उनको भगाने जाता हूँ बेटी।'

माया—नहीं बाबू जी, मैं भी मारकर भगा दूँगी।

बाहर से मुन्शी जी आकर माया से बोले—चलो बेटी, हम और तुम बाग़ की सैर कर आयें। इनको जाने दो। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

माया सब सुध भूल गई और दादा जी के साथ बाग़ में चल दी।

(४)

बारात खूब धूम-धाम से आई। बाग़ में जनवासा दिया गया। माया बेचारी को वहाँ नहीं जाने दिया। न जाने वहाँ क्या तमाशा हो रहा है और न जाने उसे क्यों नहीं जाने दिया जाता, लेकिन जब बारात

द्वार पर आ गई, तो उसको रोकना मुश्किल ही नहीं, असम्भव था। जब मुन्शी जी थाल में आरती सजा कर और दूसरे थाल में कपड़े और गिन्नियाँ लेकर चले, तो माया कैसे घर रह सकती थी! पहले तो किसी तरह स्त्रियों ने उसे क़ैद कर रखा था; मगर जब स्त्रियाँ खुद बारात की शोभा देखने के लिए अपने मन पर क़ाबू नहीं रख सकतीं, तो माया तो बच्ची ही है।

माया कूदती-फाँदती अपने दादाजी के पास पहुँची। जब देखा कि वह बड़े भाव से पूजा कर रहे हैं तो खुद भी बिना कुछ कहे-सुने वर के पास ही बग़ल में खड़ी होकर बोली—अब से तुम मेरे घर रहना, अच्छा! मुझसे लड़ना नहीं, मैं तुझे अपने खिलौने दूँगी। मेरे घर में बहुत सी मिठाई है। तुझे खिलाऊँगी अच्छा! जब वर ने इसका भी कोई उत्तर न दिया, तो माया खीजकर कहने लगी—क्यों मुँह बना कर खड़े हो, बोलते क्यों नहीं?

दीना बाबू ने देखा कि भद्द हुआ चाहती है तो जाकर उसे गोद में उठा कर बोले—बेटी, तू बड़ी पागल है।

बारात में जो बूढ़े थे, वह तो ऐसी कन्या देखकर खुश थे। उनके बचपन में इसी तरह के ब्याह होते थे। हाँ युवक हँस रहे थे। उनके लिए ऐसी कन्या एक अजूबा थी।

दीना बाबू ने ज्यों ही घर में जाकर माया को गोद से उतार दिया, वह फिर दादा जी के पास पहुँच गई और जब मुन्शी जी सब सामान बरातियों को देने लगे, तो माया उनके हाथों से छीनने लगी। और रो कर बोली—यह सब मेरा है, मैं न दूँगी।

वर के पिता ने हँस कर माया को गोद में लेकर कहा—तुम्हारा ही है बेटी। और मुन्शी जी से कहा—आप यह सब सामान घर में ही रख लें। तब कहीं माया को सन्तोष हुआ। वह थाल और रुपये लिए घर में आई और बारात जनवासे गई।

(५)

सब रस्मों के बाद ब्याह का समय आया। गहने और कपड़े तो माया ने बड़े खुशी से लिये और पहने। नाइन सिखा-पढ़ाकर उसे मण्डप में लाई, पर माया ने जब देखा कि वर को बैठने को अच्छा खूबसूरत पीढ़ा मिला और उसे बैठने को केवल एक पत्तल मिली, तो वह वर से बोली—मेरा पीढ़ा दे दो, नहीं मैं गिरा दूँगी। बेचारा वर शरमा गया।

मुन्शी जी बोले—बेटी माया, झगड़ा नहीं करना होता।

माया ने बिगड़कर कहा—मेरे ही लिए तो पीढ़ा आया था। मेरा तो पीढ़ा, सो मैं पत्तल पर बैठूँ और यह राजा बन के आये हैं जो पीढ़े पर बैठेंगे।

माया की बातों पर सब को हँसी आ गई।

वर के पिता बोले—बेटी, जाने दो, मैं कल तुम्हारे लिए बहुत अच्छा पीढ़ा मँगवा दूँगा। सवेरा होने दो।

ब्याह भी ख़त्म हो गया। जब बारात जनवासे चली गई तो माया बड़ी खुश थी, क्योंकि गहने और कपड़े सब मिल गये थे।

(६)

दूसरे दिन वर के पिता ने आग्रह किया कि बहू को बिदा कर

दीजिए, क्योंकि उनकी माताजी अपने पोते की बहू को देखना चाहती थीं।

मुन्शी जी आँखों में आँसू भर कर बोले—रात के उत्पात को देख चुके हैं। अभी तो बहुत बच्ची है।

समधी जी बोले—बच्ची जैसी आपकी वैसी ही मेरी, अम्मा को भी उसे देखने की बड़ी साध है कि कहीं मर न जायें। कृपा करके एक दिन के लिए बिदा कर दीजिए। दूसरे दिन बुला लीजिएगा। उनकी साध पूरी हो जायगी।

बिदाई का मुहूर्त्त आ गया। बाजे बजने लगे। द्वार पर पालकी लगा दी गई। माया अपनी सहेलियों के साथ अन्दर पालकी में बैठ गई। सब मेला देखने चलेंगे। अपने गहने कपड़े दिखलाती थी और खुश होती थी।

रज़िया बोली—जब मेरा ब्याह होगा, तब मुझे भी इसी तरह का सब सामान मिलेगा। तुम्हारे बाबूजी बड़े अच्छे हैं। तभी तो तुम्हारा ब्याह कर दिया ; तभी तो तुम्हें गहने और कपड़े मिल गये।

उस मंडली में एक लकड़ी दुर्गा थी। उसकी उम्र बारह साल थी। वह दो-एक ब्याह और भी देख चुकी थी। वह जानती थी, इन गहनों के बदले खुद ही सब को छोड़ एक ग़ैर परिवार में जाना पड़ता है ; इसलिए इन चीज़ों का मूल्य उसकी आँखों में नहीं के बराबर हो गया था।

माया ने हँसकर कहा—दुर्गा दीदी, जल्दी आओ, नहीं तो तुम्हें जगह न मिलेगी।

दुर्गा बोली—माया, तू पागल है। मैं नहीं जाऊँगी।

उधर भीतर सब लोग माया को ढूँढ़ते हैं। घर में पता नहीं, सब रो रहे हैं। माया हँस रही है।

मुन्शी जी ने बाहर जाकर देखा तो माया अपनी मंडली के साथ पालकी में बैठी है। सब से हँस-हँसकर बातें करती है।

मुन्शी जी के रुके हुए आँसू माया का भोलापन देख कर और भी उमड़ आये। बोले—प्यारी माया, क्या तू आज अपने दादा को भूल गई? मैं तुझे छाती से लगा लूँ बेटी, आ......

माया को कुछ समझ में न आया। बोली—दादा जी, आप भी चलें मेला देखने। आप भी बैठिए। मैं न उतरूँगी।

जैसे माया बैठी थी, उसी तरह बिदा हो गई; किन्तु उतरी नहीं। दादा, पिता और भाई, बहिनें सब स्टेशन तक पहुँचाने गये।

(७)

जब तक सखियाँ गाड़ी में थीं, तब तक माया खुश थी; किन्तु जब वह अकेली एक बूढ़ी स्त्री के साथ रह गई, घर का कोई दूसरा न था, तब तो माया ने रोना और चीखना शुरू किया। गाड़ी पर से कूदना भी चाहती थी। बार-बार कहती थी, मैं दादा जी के पास जाऊँगी।

महराजिन बोली—बेटी, शोर मत करो। गाड़ी पर चलो, कल हम तुम दोनों चली आयेंगी।

माया रोकर बोली—मैं नहीं जाऊँगी। मैं दादा जी के पास जाऊँगी।

महराजिन—दादा जी घर गये, कल आयेंगे। तब मैं और तुम दोनों दादा जी के पास चलेंगी।

माया जब किसी तरह चुप न हुई तो महराजिन बोली—देखो बेटी, तुम रोओगी तो ये सब दादा जी के पास कभी न जाने देंगे; इसलिए बेटी तुम रोना नहीं और उनके घर में किसी से कुछ न बोलना। नहीं तो घर में बन्द कर देंगे, तब क्या होगा। जो कोई कुछ पूछे, तो सिर हिला देना, अच्छा! नहीं बेटी, घर में बन्द कर देंगे तो दादा के घर हम लोग कैसे जायँगे?

माया रोकर बोली—तो दादा जी मुझे क्यों छोड़ कर चले गये हैं, इन पाजियों के पास?

महराजिन बोली—चुप बेटी, कुछ न कहना, नहीं सुन लेंगे तो आफ़त आ जायगी। तब क्या होगा। बेटी, उनके घर में कुछ नहीं बोलना, जो कहें, सुन लेना और जो खाना दें, चुपके से खा लेना, भला बेटी! कल दादा जी आयेंगे, हम लोग अपने घर चले आयेंगे।

माया सहम गई—मैं कुछ नहीं बोलूँगी चाची। तुम मुझे छोड़ कर कहीं भी मत जाना। नहीं तो घर में बन्द कर देंगे तो क्या होगा चाची!

महराजिन—हाँ, कुछ नहीं बोलना, मैं कहीं नहीं जाऊँगी बेटी।

(८)

माया अपनी ससुराल आई तो बहुत डरती थी। किसी से कुछ न बोलती थी। बोलेगी तो बन्द कर दी जायगी, तब दादा जी के साथ कैसे अपने घर जायेगी। मेहमानों के साथ खाना खाने बैठी तो दादी माया को अपने हाथों से खिलाने लगी। कई चीज़ें कड़वी थीं; किन्तु माया कुछ बोलती न थी। सी-सी करती जाती थी। आँखों से पानी गिरता थ और नाक से भी।

माया की ददिया सास बोली—क्या है बेटी माया ? माया कुछ न बोली।

दादी फिर बोली—बेटी, क्यों रोती है ? बताओ, यह भी तो तेरा ही घर है। जब अबकी भी माया न बोली, तो सब को शङ्का हुई कि वह गूँगी तो नहीं है !

दादी ने महराजिन से पूछा—क्या बात है ; बहू बोलती क्यों नहीं है ?

महराजिन ने कहा—शरमाती है सरकार ! अभी तो आपके घर आई है !

दादी हँसी। अभी से इसको शरमाना किसने सिखा दिया ? अभी तो बच्ची है।

महराजिन ने कहा—साहब, घर पर भी बहुत शरमाती है।

दादी प्रसन्न हो गईं, कहा—मेरी बहू देवी है।

महराजिन—सब आपकी कृपा है। हम लोग किस लायक़ हैं।

तीसरे दिन माया खुश-खुश अपने घर आ गई। दादा जी से बोली—आप मुझको छोड़ कर चले आये। मैं वहाँ कुछ भी बोली होती तो वहाँ के लोग मुझे बन्द कर देते, तो क्या होता ? अब कभी मुझको किसी के पास न छोड़ना दादा जी, अच्छा।

दादा ने पूछा—किसी ने तुझे मारा तो नहीं, खाना अच्छा दिया था न ?

माया नाक सिकोड़कर बोली—क्या अच्छा दिया। खाना जो खिलाती थी, बड़ा कड़ुवा लगता था। मगर मैं कुछ बोली नहीं। डरती थी कि सब बन्द न कर दें।

(६)

माया पढ़ने-लिखने में बहुत तेज़ है। और घर के कामों में भी बड़ी कुशल है। साथ-ही-साथ देवी जी की बड़ी भक्त है। एक घण्टा रोज़ पूजा करती है। माया के दादा जी को मरे दो साल हो गये और जिस दिन से दादा मर गये, उसी दिन से माया पूजा करती है।

माँ खाने को बुलाती है, तो माया कहती है—अभी नहीं आऊँगी।

माँ पूछती है—देवी से क्या चाहती है, जो उसी देवी में रात-दिन लीन रहती है।

माया अब बालिका नहीं, युवती है। माया मुख पर से लम्बी-लम्बी लटों को हटाती हुई गम्भीर भाव से बोली—माँ, मैं माँगती हूँ कि देवी जी मुझको वह शक्ति दो कि मैं जो चाहूँ कर सकूँ।

माँ हँसकर बोली—बेटी, क्या तू मीराबाई होना चाहती है?

'नहीं माँ, मीराबाई ने जो प्रेम किया, उससे सबका कल्याण नहीं हुआ, केवल मीराबाई का ही हुआ। मैं चाहती हूँ, मुझे वह शक्ति मिले, जो लक्ष्मीदेवी झाँसी की रानी को मिली थी।'

माँ ने हँसकर कहा—तू पागल हो गई है।

माया हँस पड़ी। उस हास-विलसित मुख पर माँ को दुर्गा की छवि दिखी। उसने सिर झुकाकर आँखें बन्द कर लीं और बोली—तू खुद ही देवी है।

माया माँ की गोद में सिर रखकर बोली—माँ देवी जी कैसी होती हैं? माँ तुमने कभी देखा है?

माँ ने माया का मुँह चूमकर कहा—मैंने तो देवीजी को कभी नहीं देखा, किंतु तुम्हारे दादा जी जब पूजा करते थे, तो रात में मैं देवी जी का स्वप्न देखती थी, और इच्छा होती थी कि उन्हीं को रात-दिन देखा करूँ; किन्तु अब नहीं देखती। अब तो कभी स्वप्न में आती हैं, तो मेरा कलेजा काँपने लगता है। अभी तू हँसी थी तो तेरा रूप उसी स्वप्नों वाली देवी जैसा था।

(१०)

माया का गौना जब जाने लगा, तो उसकी माँ दीना बाबू से बोली—माया के साथ देवी जी का सिंहासन भी भेज दीजिएगा। वह एक दिन भी पूजा किये बिना नहीं रहती।

दीना बाबू हँसकर बोले—तुम भी क्या बच्चों की-सी बातें करती हो! माया के साथ देवी जी का जाना तो खेलवाड़ मालूम होता है। दूसरे कैसा ढोंग बतलायेंगे। मुझे तो खुद ही हँसी आती है।

माया की माँ रोष से पति का मुँह देख कर बोली—पुरुषों के लिए दुनिया के सभी कार्य ढोंग होते हैं। दादा जी आपसे कम विद्वान थे, जो माया के लिए बरसों उपासना करते रहे थे?

'दादा जी तो माया के लिए देवी पूजते थे। अब माया को क्या लेना है, सो भी सुन लूँ?'

'तुम लोगों से कौन बतबढ़ाव करे।'

'अच्छा भाई, देवी जी भी माया के साथ जायँगी। अब खुश हुई।'

'आप अपने उपदेश अपने ही पास रखा कीजिए। बहुत दिन तक सुन चुकी, बच्ची नहीं हूँ।'

(११)

माया अपने ससुराल आई। घर के सभी आदमी माया को प्यार करते थे। माया भी सबका आदर-सत्कार करती थी। माया के पति अविनाशचन्द्र भी उसे बहुत प्यार करते थे।

एक दिन अविनाश बाबू माया से बोले—क्यों माया तुम्हें याद है, जब ब्याह में तुमने मुझे गूँगा कहा था ?

माया हँसकर सिर नीचा करके बोली—मुझे तो वह बचपन अपना सब कुछ देने पर भी मिलता तो ले लेती।

अविनाश बाबू बोले—तुम्हारा कहना ठीक है। मैं भी बचपन के दिनों को सोचता हूँ तो मेरी भी यही इच्छा होती है। लेकिन फिर तुम कैसे मेरे घर आतीं ?

माया बोली—हम दोनों दादा जी के पास खेलते। बचपन की खुशी अब इस जीवन में फिर न मिलेगी।

अविनाश बाबू ने हँस कर कहा—तो चलो माया ईश्वर से कहें कि हम दोनों को फिर बालक बना दें। यह कहते-कहते अविनाश बाबू ने सुराही से एक गिलास पानी लिया और पीकर बोले—मेरे पेट में कुछ दर्द हो रहा है माया! आज तो मैंने कोई ऐसी चीज़ नहीं खाई। यह अनायास दर्द क्यों होने लगा ?

माया ने देखा, उनका मुख पीला पड़ गया है और पेट के दर्द को ज़ोर से दबाने पर भी उनकी बेचैनी बढ़ती जाती है। एक क्षण में दर्द और बढ़ा, वह चारपाई पर लेटकर हाथ-पाँव पटकने लगे। देखते-देखते जैसे किसी ने उनकी देह का रक्त चूस लिया।

माया ने दौड़कर अपनी सास को जगाया और उसके साथ लौटी तो अविनाश बाबू क़ै कर रहे थे। उनके पिता को खबर दी गई। वे दौड़े आये। अविनाश को तिल-तिल पर क़ै हो रही थी। तुरन्त डॉक्टर बुलाया गया। उसने कहा, कॉलरा है। शहर में कॉलरा के केस हो रहे थे; मगर इस घर में उसका प्रकोप होगा, यह शंका किसे थी। सब के हाथ-पाँव फूल गये।

(१२)

आज अविनाशबाबू को रात से कॉलरा हो गया है। आदमियों की भीड़ लगी है। घर में डॉक्टर पर डॉक्टर आते हैं किन्तु किसी की दवा कारगर नहीं होती है। जो दवा दी जाती है, उससे लाभ के बदले हानि ही होती है।

अविनाश के माँ-बाप सिर पटक पटक कर रो रहे हैं? माँ कहती है—हाय भगवान्! इसको अच्छा......

वैद्य जी आये, तो नाड़ी देखकर बोले—इसमें जान नहीं है। मुझे क्या देखने को बुलाया है?

माँ भीतर पागलों की तरह दौड़ी गई कि देवी जी की प्रतिमा को चूर-चूर करके फेंक दूँगी जिसे बहू रात-दिन पूजती है, मेरे बेटे की...

माया वहीं सिंहासन के पास ध्यान में मग्न बैठी थी। सास का आना भी उसे ज्ञात न हुआ।

सास ने क्रोध में आकर माया की पीठ में दो लातें जमाई और बोली—पापिनी, मेरा लाल वहाँ दम तोड़ रहा है और तू यहाँ देवी की पूजा करने बैठी है?

माया की समाधि टूटी, सास के पैरों को सहलाती हुई बोली—माँ, देवी जी उन्हें अच्छा कर देंगी। घबराओ नहीं, देवी जी ने अभी-अभी मुझसे कहा है कि तेरा पति अच्छा हो गया।

सास ने और भी क्रोध में आकर कहा—अगर तेरी देवी ने यह कहा तो झूठ कहा। हाय भगवान्! इस पापिन को कैसे समझाएँ—इस देवी की प्रतिमा को अभी चूर-चूर कर रख दूँगी, हट जा मैं इसको उठाकर कूड़े में फेंक दूँगी।

जैसे ही सास ने प्रतिमा में हाथ लगाया कि माया रो कर बोली—माँ, देवीजी उन्हें अच्छा कर देंगी मुझे विश्वास है, और उसी वक्त उठ कर अविनाशबाबू के पास आई। उसे देखते ही उन्होंने कहा—कहाँ थी माया, ज़रा मुझे पानी पिला दे!

उसकी सास भी उसके पीछे-पीछे आई थी, माया को गले लगाकर लज्जित स्वर में बोली—मुझे क्षमा करो बेटी, तू तो सचमुच देवी की अवतार है।

माया ने सास के चरणों पर सिर रखकर कहा—आपके पुण्य का फल है अम्माँ जी! मैं तो वही आपकी लौंडी हूँ।

विमाता

मुन्शी रमाकान्त जी की स्त्री का जब देहान्त हुआ तो मुन्शी जी का पुत्र सोहन पन्द्रह साल का था। घर में मुन्शी जी की माँ थीं। वही सब काम करती थीं। और मुन्शी जी की स्त्री के मरने की देर थी कि ब्याह के लिए न्योते आने लगे।

मुन्शी जी ने यह प्रस्ताव अपनी माँ से कहा। माँ दुनिया देख चुकी थी, बोली—बेटा, मेरी राय पूछते हो, तो मैं यही कहूँगी कि तुम अब इन रोगों में न पड़ो, क्योंकि तुम्हारे अब एक लड़का है। तुमको अब सिर्फ़ अपना ही ध्यान नहीं रखना है, बल्कि सोहन का भी। और फिर आमदनी का यह हाल है—मुश्किल से रो-धोकर महीना बीतता है। अगर तुमको घर ही बसाने की फ़िक्र है, तो दो-चार साल में सोहन ही का ब्याह करके घर बसा लेना।

मुन्शी जी बोले—अम्माँ, तुम्हीं सोचो, मुझे कोई पानी देने को चाहिए कि नहीं ? आज तो तुम हो, लेकिन कल को कोई एक रोटी भी देनेवाला तो नहीं है। फिर लड़के के लिए भी माँ की ज़रूरत है ही ; नहीं तो मान लो तुम मर ही गईं तो बहू को कौन सँभालेगा, कौन देख भाल करेगा ? फिर मैं ही बीमार-आराम हो जाऊँ, तो सेवा-बर्दाश्त कौन करेगा ?

माँ बोली—बेटा, जैसा मुझे पसन्द था मैंने कह दिया—फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।

मुन्शी जी माँ से बोले—सब कहते हैं कि वह घर के काम-काज में बड़ी कुशल हैं और बच्चों से उनको बड़ा प्रेम है। लोगों का तो कहना है कि पैसे का काम पाई में करने वाली हैं।

माँ—तो फिर ठीक है। इसी तरह की बहू की तो ज़रूरत है जो सोहन को आराम से रखे और अपना घर देखे। और क्या चाहिए बेटा ! सोहन का नाम लेते ही लेते माँ रो दी। हाय ! वह देवी मरने योग्य थी ?—सब भगवान की मरज़ी है।

मुन्शी जी बाहर चले गये।

(२)

कुछ समय बाद उनका ब्याह हो गया। नई बहू आ गई। वह घर के कामों में कुशल थी। पैसे का काम पाई में होने लगा। माँ खामोश थी, बहू बड़ी अच्छी है। मुन्शी जी भी नई बहू को बहुत प्यार करते थे। गृहिणी की चातुरी देख मुन्शी जी अपने मित्रों में उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते थे। पहले रुपये-पैसे माँ के हाथ में रहते थे तो सोहन को आराम था।

दो-एक बार नई बहू रम्भा देवी ने इशारे से कहा—अम्मा, जब तुम्हीं घर-गृहस्थी सँभाल सकती थीं, तो फिर मुझे ब्याह कर लाने की क्या ज़रूरत थी ?

माँ, भाँप कर बोली—बेटी, बड़ी खुशी की बात है। तुम्हीं अब घर देख लोगी तो मुझे भी छुट्टी मिल जायेगी।

माँ चाभी रम्भा को देकर मुक्त हो गईं।

रम्भा देवी सोहन को फूटी आँखों नहीं देख सकती थीं। सोहन बाहर से आया तो बोला—चाची, मुझे पाँच रुपये दे दो, मैं किताब लेने चौक जाता हूँ।

रम्भा आँखें फैला कर बोली—अभी रुपये नहीं हैं।

सोहन बोला—तुम कहती हो रुपये नहीं हैं, और अब मेरा इम्तहान कुल पन्द्रह दिन और है। मेरी समझ में नहीं आता, इम्तहान सर पर, किताब का कहीं पता नहीं।

रम्भा—किसी से माँग कर क्यों नहीं पढ़ता ? सोहन को ग़ुस्सा आ गया, बोला—जब बाप के पैसा नहीं निकलता है तो दूसरे क्यों देने लगे ?

रम्भा क्रोध से बोली—ठीक ही है। जब तेरा बाप ही मर गया तो मैं किसकी कमाई दूँगी ! आज आने दो तो कहती हूँ कि तुम्हारा लाड़ला कहता है कि मेरा बाप तो मर गया।

सोहन उसको रोककर बोला—क्यों व्यर्थ मेरे ऊपर तोहमत कसती हो ? मैंने मरने-जीने का तो नाम तक नहीं लिया।

रम्भा—चुप हो, नहीं तो कहे देती हूँ ! झूठा कहीं का, मक्कार! मेरे ही मुँह पर कहता है और मुझे ही झूठी बनाता है।

सोहन आँखों में आँसू भर कर बाहर चला गया।

शाम को जब मुंशी जी आये, तो रम्भा खाट पर लेटी हुई थी। मुन्शी जी ने जल्दी से कपड़े बदले और रम्भा के पास जाकर बोले—कैसी तबियत है ?

रम्भा बोली—तबियत को क्या हुआ है ? मुझे मौत भी डरती है, क्योंकि मैं अभागिनी हूँ न ! क्या यही घर था कि रात-दिन किच-किच होती रहती है !

मुंशी जी हँसकर रम्भा के गाल में चपत लगाकर बोले—रम्भा, तू बड़ी पागल है। तेरा ब्याह मुझसे हुआ है कि घर से ? अगर सोहन ने कुछ कहा है, तो बतला, अब मैं उसका ज़िम्मेदार नहीं। अब वह भी जवान हो गया।

रम्भा बोली—तुम्हीं को तो कहता था कि मेरा बाप मर गया, और न जाने क्या-क्या बकता था। मैंने मना किया कि क्यों उनको कोसते हो, तो मारने दौड़ा। और कहता है कि तुम दोनों का मुँह देखना पाप है।

मुन्शी जी—किस लिए लड़ता था, और कहाँ गया ?

रम्भा—लड़ता था कि बीस रुपये दे दो। मैंने कहा कि तनख्वाह मिलेगी, कल दूँगी, आज मेरे पास बीस रुपये नहीं हैं। तब तुम्हारा नाम लेकर कहने लगा कि अब समझ लूँ कि मर गये ? उसी पर मैंने मना किया कि रुपये के लिए मत कोसो, दिन-घड़ी कैसी लगी है। उसी पर मुझको मारने उठा था।

मुन्शी जी—है कहाँ ?

रम्भा—है कहाँ, मैं क्या जानूँ ? तुम्हारी माँ पंडित जी के घर मिलने

गई हैं, उन्हीं के पास गया होगा। अभी वह भी फ़ौज लेकर आयेंगी।

मुन्शी जी—अच्छा तो अम्मा भी शह देती हैं।

रम्भा—तब क्या तुम समझते थे वह अच्छी बातें बतलायेंगी। वह तो और भी फूटी आँखों नहीं देख सकतीं।

मुन्शी जी—मेरी समझ में नहीं आता, मैंने इन लोगों का क्या बिगाड़ा है।

रम्भा—कुछ नहीं, मैं ही काँटा हूँ, किन्तु इसमें मेरा क्या बस! तुम्हें चाहिए था कि सबकी राय से ब्याह करते। जब मैं गहने और कपड़े पहनती हूँ, अम्मा जी रोती ज़रूर हैं। मैंने क्या सोहन की माँ को मार डाला है? फिर जब मैंने सोहन के बाप ही को ले लिया तो फिर गहने और कपड़े की बात ही क्या।

मुन्शी जी—तब सोहन का क्या बिगड़ता है?

रम्भा—क्यों नहीं बिगड़ता है? सबसे कहता तो फिरता है। रोता घर-घर है।

मुन्शी जी—ऐसा ही चाल-चलन है तो अभी क्या रोता है, अभी और रोएगा।

किसी ने मुंशी जी को बाहर से आवाज़ दी और वह बाहर चले गये।

(३)

सोहन अपनी दादी के पास बैठा था।

बाहर से मुन्शी जी ने गुहार लगाई—सोहन यहाँ आ, आज-कल तेरा मिज़ाज़ बहुत बढ़ गया है तो तेरे लिए मेरे घर में जगह नहीं। अब तू भी जवान हुआ, कमा-खा।

बूढ़ी माँ रोकर बोली—क्यों तुम दो के दोनों रात-दिन बेचारे का दिल दुखाया करते हो ? उनसे क्या किया है, बेटा ?

मुन्शी जी आपे से बाहर होकर बोले—चुप रहो। तुम्हीं ने उसको सिर चढ़ा रखा है।

बूढ़ी माँ को भी तैश आ गया, बोली—मैंने क्या सिर चढ़ा रखा है ? हाँ, अनर्थ नहीं देखा जाता। मैं कहती हूँ, क्या उसकी माँ मर गई तो उसके प्राण ही लेकर छोड़ोगे ?

मुन्शी जी—उसके प्राण कौन ले सकता है। मैंने उसकी ज़िन्दगी भर का ठेका तो ले नहीं लिया है। हाथ-पैरवाला हुआ, कमाता-खाता क्यों नहीं ? मेरे और भी तो बच्चे हैं—क्या सिर्फ़ उसी को पालना है ? अब वह मेरे घर में नहीं रह सकता।

बूढ़ी माँ—खैर, जैसी तुम्हारी मरज़ी। मुझे क्या करना है। मैं भी तो गाँव जाना चाहती हूँ, तब तुम्हें जैसा अच्छा लगे करना।

मुन्शी जी—मैं तुम्हें नहीं रोक सकता। तुम दोनों जाओ। तुम्हारे पीछे मैं अपना घर नहीं चौपट कर सकता।

बूढ़ी माँ—तो आज शाम की गाड़ी से मैं जाती हूँ। जैसा तुम्हें उचित दीखे, करना।

मुन्शी जी—शौक से। मैंने बहुत सहा, अब नहीं सहा जाता।

रम्भा आकर बोली—सब नखरा है। जब घरवालों को भी यहीं से खाने को जाता है तो रोटियाँ चलती हैं। जान पड़ता है कि घर में सब धन्ना-सेठ ही हैं।

बूढ़ी माँ ने इसका कुछ उत्तर न दिया। रम्भा चुप हो गई।

मुन्शी जी रम्भा से बोले—भोजन तैयार है ? मुझे दोस्त से मिलने जाना है। बारह बजे का समय दिया था।

रम्भा बोली—चलिए, भोजन तैयार है। अभी तो बहुत समय है।

दोनों चले गये।

तब बूढ़ी माँ को याद आई। सोहन को इधर-उधर देखा, कहीं दिखाई न दिया। सोचा, कहाँ चला गया ? आज रात को हम लोगों को चला ही जाना चाहिए। जिस घर में अपने को कोई न पूछता हो, उसमें रहना व्यर्थ है। फिर आज बेटे की बातों से मालूम हो गया कि जब वह अपने बेटे को निकाल सकता है, तो मेरी क्या हस्ती। फिर सोचती है कि मैं सोहन को अगर ले के चली जाऊँगी, तो उसका पढ़ना छूट जायगा। उसकी ज़िन्दगी चौपट हो जायगी। फिर बेचारी बुढ़िया सोचती है, क्यों न साल-दो-साल और बिता दूँ जिसमें सोहन को एक रोटी का सहारा हो जाय ? तब देखा जायगा। सोचते-सोचते बुढ़िया को रोना आ गया......

(४)

आज सोहन आठ दिन से ग़ायब है। घर में सब लोग खुश हैं। रोता कौन है ? बूढ़ी दादी न खाती है, न पीती है और न किसी को मनाने की ही फ़ुर्सत है।

बूढ़ी माँ बेटे से रोकर बोली—तुमने सोहन को निकाल कर ही दम लिया। ठीक है, मुझे घर पहुँचा दो। मैं तुम्हारे घर रहना अब पाप समझती हूँ।

मुन्शी जी बोले—जाना हो जाओ। लेकिन मैंने न सोहन को ही

निकाला है और न तुम्हें ही निकालता हूँ। फिर सोहन लड़की तो है नहीं कि चला गया तो बदनामी होगी। अच्छा हुआ, अपना कमाये-खाये। इसको मैं बुरा नहीं मानता।

रम्भा आकर बोली—देखो अम्मा, रात-दिन का रोना अच्छा नहीं होता। ठीक से रहना हो तो रहो नहीं घर को जाने को कह रही थीं तो जा सकती हो, कोई तुमको बाँधे तो है नहीं। आज तुमने मोहन को पीटा है। मैं तुम्हारे लिए बुरी हूँ न कि मोहन। मोहन भी तुम्हारा ही है। लेकिन मेरी दुश्मनी अगर बच्चे से निकालोगी तो बुरा होगा।

मुन्शी जी—इनका दिमाग़ खराब हो गया है। इनके लिए सब से ठीक घर जाना ही है, और कोई दवा नहीं। यह रात-दिन सब का घर में रहना हराम कर देंगी।

रम्भा मुँह बिचका कर बोली—मेरी तो आपने मिट्टी खराब कर दी और क्या। और आँखों में झूठा आँसू भरकर चली गई।

मुन्शी जी रम्भा के साथ-साथ कमरे में जाकर बोले—रम्भा, तुम क्यों रोती हो? तुम्हारा रोना देखकर मैं अपने को क़ाबू में नहीं रख सकता। प्रिये, मेरा खयाल करके तुम खुश रहा करो।

रम्भा—खुश रहने में ही क्या मिलता है।

मुन्शी जी—सब दुनिया है जी। सब अपना-अपना ही रोना रोते रहते हैं।

मोहन बाहर से आकर पिता की गोद में चढ़ गया। मुन्शी जी उसको बाहर लेकर चले गये। बूढ़ी माँ घर चली गई। रम्भा की माँ और भाई आ गये। और घर में जो दो आदमियों की कमी हो गई थी वह पूरी हो गई।

अब मुन्शी जी और रम्भा दोनों खुश हैं।

मुन्शी जी बोले—घर रुपये भेजने हैं रम्भा, भैया का खत आया है खेती में कुछ हुआ नहीं, और एक बैल भी मर गया है। लिखा है कि रुपये के बिना घर में बड़ी तकलीफ़ है। इसलिए कुछ रुपये हों तो भेज दो।

रम्भा मुँह बनाकर बोली—क्या यहाँ डाल में रुपये फलते हैं, कि चबैनी है कि सबको मुट्ठी-मुट्ठी भर बाँट दिया जाय ? सब के बाल-बच्चे हैं। हमारे कोई खानेवाला नहीं है ?

मुन्शी जी बोले—भाई माँ को खिलाना मेरा फ़र्ज है।

रम्भा—तो माँ चली क्यों गईं ?

मुन्शी जी हँसकर बोले—अजी तुम भी खूब हो। खैर, जो लिखा था तुमको बता दिया। अब जैसी तुम्हारी राय हो।

रम्भा—कुछ नहीं जायेगा। सभी के घर होता है। हाँ, मैं तो भूल ही गई थी। सोनार के यहाँ से मेरा कड़ा नहीं आया। आज ही तो देने को कहा था।

मुन्शी जी—अजी, मुझे भी याद नहीं था। उसे १००) देने हैं।

रम्भा बोली—मैं रुपये देती हूँ, आप जाकर लेते आवें ; क्योंकि रमेश बाबू के घर कल मुण्डन है और मुझे भी बुलावा आया है।

मुन्शी जी—दो रुपये, मैं जाऊँ ला दूँ। नहीं कल तुम मुझी को दोष देने लग जाओगी।

रम्भा रुपये देते हुए बोली—अम्मा के लिए एक अच्छी-सी साड़ी भी लेते आइयेगा क्योंकि इनको भी बुलाया है।

मुन्शी जी 'बहुत अच्छा' कहते हुए बाहर चले गये।

(५)

दादी के मरने की खबर पाकर सोहन कलकत्ते से आया है। जब काम-क्रिया से छुट्टी मिली तो अपने चाचा से बोला—चाचा मैं रुपया देता हूँ, मेरे लिए मकान बनवाना है।

मुन्शी गंगा प्रसाद बोले—घर तो है ही; क्या होगा घर बनवाकर ? रहते क्यों नहीं ? और तुम्हें कलकत्ते में रहना है कि गाँव में ?

सोहन—फिर भी घर की ज़रूरत तो होती ही है।

मुन्शी गंगा प्रसाद—पहले अपना ब्याह कर ले, फिर घर की फ़िक्र करना। भैया ने तो हम लोगों को छोड़ ही दिया, तुम्हीं को देखकर हमको भी धीरज है। और क्या बेटा, जब से तुम्हारी माँ मरी, सारा घर चौपट हो गया।

सोहन बोला—जब घर-द्वार हो जाये तो ब्याह भी सोहाता है। मैं सोचता हूँ, कल पंडितजी को बुलाकर साइत पूछ लूँ, फिर देखा जायगा।

मुन्शी गंगा प्रसाद—भैया से पूछ लो, तुम्हारे बाप हैं। नहीं सुनेंगे तो बुरा मानेंगे कि हम से नहीं पूछा।

सोहन—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैंने उनको उसी दिन समझ लिया जिस दिन उन्होंने मुझे घर से बाहर कर दिया और मेरे पीछे दादी, जो उनकी माँ थीं—को भगा दिया। वह सब कुछ अपनी स्त्री को ही समझते हैं, तो हमारे भी स्त्री आयेगी। हमें उनकी कुछ परवाह नहीं।

(६)

मुन्शी जी के मरने के बाद रम्भा गाँव में चली आई और सोहन के

चाचा के साथ रहने लगी। इसी बीच में छः महीने बीत गये और सब कुछ हो गया, रोना-धोना, झगड़ा-लड़ाई, सब कुछ।

एक दिन सोहन की चाची अपने पति से बोली—तुम मुझको मारने पर लगे हो जो इसको रख लिया है। फिर क्या मुझको वह कोई गठरी दे गये हैं? जब तक वह ज़िन्दा थे, उनको खाया और अब तुम्हें खाने पर लगी है। इसके लिए मेरे घर में रहने की जगह नहीं है। जैसे तुमने इसे घर में रखा था, वैसे ही निकाल भी दो। मैं अपने घर में इसे नहीं रखना चाहती।

मुन्शी जी बोले—तू चुप हो। मैं इसको सोहन के गले बाँधूँगा जो इसका बेटा है। मेरे ऊपर उनका कोई भी हक़ नहीं है। अभी तो मैंने इसलिए रख लिया है कि गाँव-घर के आदमी सुनेंगे तो क्या कहेंगे। फिर अभी जवान है। कोई कुछ बुरा-भला कर बैठे, तो वह तो मर गये, बदनामी तो हमीं लोगों की होगी। तू तो कुछ समझती है नहीं।

स्त्री बोली—मैं कुछ नहीं जानती। मुझे रात-दिन की किच-किच नहीं भाती। फिर इनको चाहिए, इनके बच्चों को चाहिए। आज उनके मोहन ने मेरे भान को बहुत पीटा। मेरी आँखों में खून उतर आया। लेकिन जब मैंने उस पर उलहना दिया तो कहने लगी कि मेरे बच्चे को देख कर जलती क्यों है! मेरे पास कुछ भी न हो तब भी इनको दूध के कुल्ले करने को दूँ।

मुन्शी जी ने झगड़े का हाल अपनी माँ की ज़बानी सुना था। चुपके से उठकर सोहन के मकान की राह ली।

(६)

जाकर सोहन से बोले—बेटा, मोहन की माँ को अब तुम सँभाल कर रखो। मेरा हाल तो तुमसे छिपा नहीं है। मैं तुम्हारे बाप का भाई हूँ और तुम उनके लड़के हो। तुम्हारे ऊपर उनका हक़ भी है। छः महीने हो गये और तुमने एक पैसा भी न दिया और न खोज-खबर ही ली।

सोहन बोला—पैसा देना, खबर लेना मैं पाप समझता हूँ।

चाचा—फिर यही जवाब है? वह तुम्हारी विमाता है। उसके बच्चे तुम्हारे भाई हैं कि नहीं, बहन हैं कि नहीं?

सोहन—बाप मर गये हैं, माँ तो ज़िन्दा है। उसका कर्त्तव्य है बच्चों का पालन करना, मेरा नहीं।

चाचा—तो मुझे इसकी पंचायत करनी होगी। कहीं कुछ भला-बुरा हुआ तो मुँह दिखाने योग्य न रहोगे। सोच लो अभी जवान स्त्री है। किसी के दिल का हाल कौन जाने।

सोहन—मैं इसके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। मेरे लिए अपना ही परिवार सँभालना मुश्किल हो रहा है।

चाचा—तू कर्तव्यहीन है, बेशर्म है। तेरे सामने कुल-मर्यादा की भी कुछ क़ीमत नहीं। अपने स्वार्थ के ही कारण ऐसा कहता है।

सोहन—मुझे अपने बड़प्पन लेने के पीछे अपने बच्चों की हत्या करने का कोई हक़ नहीं। जो कुछ भी मेरे घर में है, वह मेरे अकेले का नहीं। उसमें मेरे बाल-बच्चों और स्त्री का भी हिस्सा है। अब मैं वह पहले का सोहन नहीं जिसकी अपनी हर एक चीज़ अपनी थी।

अब मेरे ऊपर भी अपनी स्त्री और बच्चों की ज़िम्मेदारी है। मोहन की माँ को अपने घर में रखने के मानी यह हैं कि अपने बच्चों के मुँह का कौर छीन कर मैं अपने बाप के नाम खिला दूँ। और फिर जो बाप अपनी सन्तान के लिए त्याग नहीं कर सकता, उसके लिए बेटे के त्याग करने की कोई ज़रूरत मैं नहीं समझता। फिर तुम स्त्रियों को अपंग क्यों समझते हो। तुम उनके साथ अन्याय कर रहे हो, क्योंकि उनको अपने पैरों पर खड़ा होने का समय नहीं देते। उनको खुद ही अपने पति की इज़्ज़त का खयाल होगा, और हमसे और तुमसे ज़्यादा, क्योंकि पति के लिए सबसे प्रिय वस्तु स्त्री है। इसलिए वह भी उसकी इज़्जत को अपनी इज़्ज़त समझेगी, उसके कर्तव्य को अपना कर्तव्य समझेगी। अगर हम लोग उसका भार अपने सिर पर ले लेंगे, तो कहने को होगा कि जब तक जीवित था, तब तक तो उसका था और मर गया तो दूसरों का हो गया। नेक और स्वाभिमानिनी स्त्री इसको अपमान समझेगी, और यह है भी लज्जा की बात।

चाचा—अभी ऐसा कहते हो ; कल को कुछ भला-बुरा हो गया तो पत्ते पर माँस बिछ जायगा। तब बोलने योग्य नहीं रहोगे। अभी बच्चे हो। ज़रा-सी अँग्रेज़ी पढ़ लिया और विलायत का सपना देखने लगे। यह है हिन्दुस्तान !

सोहन—मेरी निगाह में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समाज एक हो। उनकी इच्छा हो किसी से ब्याह कर सकती हैं। मैं कभी इसको बुरा नहीं कहूँगा, बल्कि और खुश होऊँगा। यह तो स्त्रियों के साथ अन्याय है कि पुरुष तो बुड्ढा-खुर्राट होकर भी ब्याह कर सके और विधवा स्त्रियों

को जो अभी युवती हैं समाज सती होने का उपदेश करे। पुरुषों ने अपने अधिकार जमाने के लिए उनके साथ अन्याय किया है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता।

चाचा—तू इतना नीच स्वभाव का हो गया है कि तुझसे बात करना फ़िज़ूल है।

सोहन—तो मुझसे कुछ भी मत कहो। जैसा तुन्हें सूझे करो क्योंकि मेरे बाप के साथ तुम्हारा भी तो कुछ कर्तव्य है, कि सब मेरा ही है। और फिर जो मुझे पन्द्रह साल तक पाला, तो मेरे साथ कोई उपकार नहीं किया। हाँ, जो तुम्हारे साथ किया सब उपकार ही किया। उसको अदा करना तुम्हारा फ़र्ज़ है। मुझे तो पैदा किया था, न पालते तो सरकार गरदन नापती; लेकिन तुम्हारे लिए वहाँ भी गुंजाइश नहीं थी।

चचा ने जब देखा कि सोहन के सामने चलनेवाली नहीं है बल्कि वह उन्हें ही उल्टा फँसाना चाहता है, तो सोहन से बोले—ठीक है बेटा, मैं जाता हूँ।

सोहन बोला—मेरे कहने को आप बुरा न मानियेगा।

चचा—नहीं बेटा, बुरा क्यों मानने लगा। अभी तक मैं अपने को भाई से अलग समझता था लेकिन अब मालूम हुआ कि भाई हमसे अलग न थे।

सोहन—हाँ, मेरी माँ खास माँ होती और उन्हें आप अलग कर देते, तो उसके लिए मैं ज़िम्मेदार हो भी सकता था; लेकिन इनके साथ तो दूसरी बात है।

(७)

रम्भा चुपके-से जाकर सोहन की सब बातें सुनती थी। पहले तो उसके जी में आया कि सोहन का मुँह नोच ले कि उसका ही बाप तो उसे व्याह कर लाया था।

वह उससे पूछना ही चाहती थी—तू मुझे क्यों नहीं रखेगा, मेरे बच्चों को क्यों नहीं पालेगा? तेरे बच्चे हैं तो क्या ये पड़े हुए मिले हैं जो इन्हें नहीं पालेगा? फिर सोहन का कहना अपने आप दुहराया कि मेरी माँ होती, तो मैं ज़िम्मेदार था। उसका कहना ठीक ही है कि जब बाप बेटे के लिए त्याग नहीं कर सकता, तो बेटा बाप के लिए क्यों जान दे? वह अपने बीवी-बच्चों को छोड़कर अपने बाप के बीवी-बच्चों के लिए क्यों जान दे? इन सब बातों की सत्यता का अनुमान करते-करते उसकी आँखों में पश्चात्ताप के आँसू ढुलक पड़े। जो कुछ भी सोहन ने कहा था, वह उसको निर्विकार सत्य प्रतीत हुआ। उसने फिर सोचा, जब मोहन के पिता घर रुपया भेजने के लिए कहते थे, तब तो मैं अड़ंगा लगा दिया करती थी। यहाँ तक कि अपनी माँ के पास भी वह रुपया न भेज पाये। तब इन सब कुकर्मों की गठरी सर पर लादे, मुझको सोहन और अपने जेठ की कमाई खाने का क्या हक़ हासिल है? मेरा इस घर में रहकर खाना खैरात और भीख माँग कर खाने के बराबर है। जिस दिन यह लोग चाहें, मुझको धता बता सकते हैं। उसने सोहन या अपने जेठ के घर रोटी तोड़ने को एक जायज़ हक़ बनाने का सिर्फ़ एक ज़रिया पाया। उसने सोचा कि घर में वह महरी की तरह काम करे और घर में खाना खाए। अगर उस पर भी यह लोग खाना

दे दें तो यह इनकी नेक-नीयती है क्योंकि भाभी जी भी तो काम करके ही खाना खाती हैं। उसको अपने ऊपर घृणा हो आई और उसके हृदय में एक बार आत्महत्या कर डालने का विचार तक आ गया। मैं अभी तक स्वामिनी बनना चाहती थी; लेकिन मैं उसके योग्य नहीं थी; और अपने योग्य ही कहारिन का पद पा रही हूँ।

उसने अपने-आप को औरों के मुक़ाबिले में आँका और परिणाम यह हुआ कि वह उन आदर्श देवी-देवताओं के सम्मुख एक हत्यारिनी—समाज की हत्यारिनी साबित हुई।

उसके हृदय की गति ऐसी हो रही थी कि उसका वर्णन करना इस तुच्छ लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है। उसकी इच्छा हो रही थी कि चुल्लू-भर पानी में डूबकर अपना यह काला मुँह लोगों को न दिखाए।

उसने अपने कुकृत्यों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगी।

(८)

रम्भा रात दिन काम करती है, सबसे पहले उठती है और सब के बाद सोती है। जब सारा संसार निद्रा देवी की गोद में होता है, तब वह घर का काम किया करती है।

रम्भा ने अपनी जेठानी से कहा—भाभी जी, मैं आटा घर में पीस लिया करूँगी। बाहर पिसाई देने की ज़रूरत नहीं।

भाभी बोली—रम्भा तू क्या क्या कर लेगी? तू तो मुझे कुछ करने ही नहीं देती। तेरे ही मारे तो मैं दिन-पर-दिन काहिल होती जा रही हूँ। उस पर तू सोहन के भी घर का काम कर आती है। तुझे इतना काम नहीं करना चाहिए।

रम्भा हँसकर बोली—तुम चुप तो रहा करो ज़रा। मैं कोई छुईमुई तो हूँ नहीं जो थोड़ा-सा काम करने में मर जाऊँगी।

भाभी हँस कर प्रीति से बोलीं—मुझे तो तुमने छुईमुई बना दिया है। और रोज़-बरोज़ बनाती जाती हो। मेरा कैसे बीतेगा?

रम्भा—बीतने को क्या है। तुम मुझसे बड़ी भी तो बहुत हो, क्या अब भी तुम्हीं काम करती जाओगी? फिर मैं तो हूँ ही। मैं कहाँ जाती हूँ जो तुमको कष्ट होगा?

भाभी—रम्भा, तू क्यों इतना काम करती है? मैं डरती हूँ कि कहीं तू बीमार पड़ गई तो मैं मर जाऊँगी, क्योंकि मेरे किये तो अब कुछ होता ही नहीं।

रम्भा—बीमार क्यों पड़ जाऊँगी? कोई बूढ़ी थोड़ी ही हूँ। मेरी इच्छा तो होती है कि तुम्हारे पाँव धो-धोकर पीऊँ। मेरे बड़े भाग्य थे जो तुम लोग मुझको मिलीं। मेरा जीवन सफल हो गया। पारस मणि का स्पर्श बड़ी साधना से हो पाता है।

भाभी—तू मुझको क्यों हरदम गाली दिया करती है? मैंने तेरे लिए क्या किया है? तू ने ही बल्कि मुझे मोल ले लिया है।

रम्भा दोनों हाथ से भाभी का मुँह बन्द करते हुए बोली—मुझ नीच की तारीफ़ों का पुल बाँधती हो? मैं तुम्हारी दासी भी होने योग्य नहीं हूँ। यह तो मैं अपने पूर्व कर्मों का प्रायश्चित कर रही हूँ।

भाभी बड़े प्यार से उसे गले लगा कर बोली—तू मेरी धर्म की बेटी है।

रम्भा भाभी की छाती पर सिर रखकर रोती हुई बोली—आज से मुझे तुम और दादा जी अपनी बेटी ही समझना।

भाभी गद्‌गद् होकर बोलीं—मैं तो बेटी ही समझती हूँ, पगली !

बाहर से मुंशी जी ने आकर कहा—अच्छा, रम्भा अब बहू से बेटी हो गई है ?

रम्भा अपनी लाज को छिपाने का विफल प्रयास करती हुई बोली—जी, बहू से बेटी बनने में मैं अधिक सुखी हूँ ।

मुन्शी जी हँसकर रो दिये ।

(६)

मुन्शी जी सोहन के घर जाकर बोले—बेटा सोहन, मेरी बात को न टालना । मैं तुम्हें अपने साथ रहने को कहने आया हूँ ।

सोहन चाचा के पैर पर गिर कर बोला—मैं पहले से ही सोचता था कि सब लोग साथ-साथ रहें । लेकिन लज्जा-वश आपके सामने मेरी ज़बान न खुलती थी । अब मैं तय्यार हूँ । धन्यवाद है आप को ।

उसी दिन से सब लोग एक ही में हैं । अब भी गाँव में रम्भा की घर-घर चर्चा होती है । एक दूसरे के सामने वह आदर्श रूप में रखी जाती है ।

रम्भा अपने लिए नहीं, बल्कि सब की सेवा के लिए है । पहले रम्भा की सूरत—जो सोने और चाँदी और मूल्यवान कपड़ों से नहीं चमकती थी—उसी मुखड़े पर अब रात-दिन की मेहनत, कष्ट और त्याग से कान्ति आ गई है ।

वह अपने को सब की चेरी समझ कर सेवा करती है, किन्तु सब के हृदय की रानी है ।

पछतावा

गिरधरसिंह अपने भाई का सब लेकर और बेचकर भागा तो बंबई पहुँचा। वहाँ उसके गाँव के दो-एक आदमी और थे। किन्तु सबके-सब [illegible]केमस्त थे। गिरधर के पास हज़ार-दो हज़ार रुपया था, इसलिए सभी ने उसका बड़ा स्वागत किया।

गिरधर पंचमसिंह से बोला—क्यों भाई, तुम क्या काम करते हो?

पंचम ने जवाब दिया—भाई, मैं क्या बताऊँ क्या करता हूँ। रंडी का दलाल हूँ। जब मैंने देखा कि कोई काम नहीं मिलता, तो सोचा कि जब गाँव-घर छोड़कर आया ही हूँ तो जो काम मिल जाय, वही सही। भागते भूत की लँगोटी भली। कौन यहाँ देखने आता है।

गिरधर—यार, तुम तो घर पर कहते थे कि बम्बई में काम टूटा पड़ता है।

पंचम—तो क्या यह काम नहीं है भाई ?

गिरधर—यह रंडी की दलाली भला कोई काम है। सरासर ज़िल्लत। तुम्हें मिलता क्या है ?

पंचम—मिलता क्या है ? जै आदमी फँसा ले जाऊँगा, उतने रुपये मिलें, तो भी खाने भर को बहुत है। फिर, जो साहब लोग आते हैं, उनका मैं सौदा-सुलुफ़ भी ला देता हूँ। जब चलने लगते हैं तो खुश होकर धेला-पैसा दे ही मरते हैं।

गिरधर बोला—तो ठीक है। हाँ, मैं तो बातों में लग गया। यहाँ खाने का क्या इन्तज़ाम करना होगा ?

पंचम—चलो होटल में। वहीं भोजन होगा, और क्या !

गिरधर—कौन लोगों का होटल है भाई ?

पंचम—मैं तो जैनियों के होटल में खाता हूँ। यहाँ कौन पूछता है, किसका होटल है। यह सब तो गाँव का ही रोग है।

गिरधर बोला—तो चलो भाई, भोजन करें। मेरे पेट में तो चूहे कूद रहे हैं।

पंचम—चलो मैं तो तैयार हूँ।

दोनों चले गये।

(२)

गिरधरसिंह को बम्बई में आये दो महीने हो गये, तब एक दिन उन पर भी रंग चढ़ा। पंचम से बोले—तुम जिसे चाहो उसे रंडी के पास ले जा सकते हो भाई।

पंचम बोला—जो रुपया खर्च कर सकते हैं, वे सब जा सकते हैं। कोई ख़ास आदमी थोड़े ही होते हैं जो जाते हैं।

गिरधर शर्माते हुए बोले—तो अच्छा आज मैं भी जाना चाहता हूँ। मुझे भी अपने साथ ले चलना, देखूँ कैसा रंग रहता है।

पंचम हँसकर बोला—पहले अपने कपड़े-लत्ते दुरुस्त कर लो। क्या उसे भी कोई गाँव की चमारिन समझे बैठे हो कि जैसे हुआ सब ठीक है? दो-चार बार तो तुम्हें उसकी सूरत ही देखने को मिलेगी। जब ख़ुश होगी, हाँ, तब कहीं और काम की बारी आवेगी।

गिरधर बोला—चलो, चलो, मुझे भी कोई अनाड़ी समझा है। मैं उससे ऐसी बातें करूँगा कि बीबी जी खुश हो जायँगी।

पंचम बोला—सुनो भाई, वहाँ कोई वकालत नहीं करनी होती। जो जितना ही बे-दरेग़ रुपया खर्च कर सकता है, उसी की जीत होती है, उसी की क़द्र होती है। समझे आप?

गिरधरसिंह बोले—मेरे पास जो कुछ भी रुपया है, वह सब मैं खोने को तैयार हूँ। ज़िन्दगी में क्यों अरमान बाक़ी रह जाय।

पंचम—भाई, मैं भी यही सोचता हूँ। चार दिन की ज़िन्दगी रो-रोकर क्यों काटें? रुपया पैसा तो आता ही जाता रहता है, जवानी तो बार-बार नहीं मिलती। इसलिए जो भोग मिल सकता है, उसे क्यों छोड़ें?

गिरधर बोला—हाँ जी, रोना तो ज़िन्दगी भर का है। कुछ दिन तो हँस-खेल लें। तो कल का ठीक समझें?

पंचम—ठीक है। मैं तो अब अपने काम

गिरधर बोला—मैं भी कहीं घूमने जाता हूँ ।

पंचम—जाओ, लेकिन जल्दी आना, जिसमें मैं आऊँ तो भटकूँ न!

पंचम चला गया ।

(३)

गिरधरसिंह आज खूब सज रहे हैं, जैसे कोई पहली बार अपनी ससुराल जाता हो !

पंचम बाहर से आया, देखा बाबू साहब खासे सेठ जी बने बैठे थे ।

पंचम हँसकर बोला—यार, तुम तो पहचाने नहीं जाते हो ।

गिरधर बोला—तो क्या तुम समझते थे मैं बेवक़ूफ़ हूँ । मैंने भी खूब सीखा है । जो कुछ कोर-कसर बाक़ी थी, वह बम्बई आकर पूरी हो गई ।

पंचम बोला—हो तो यार तुम बुद्धिमान् । इसमें कोई शक नहीं । मैं तो इतने दिन रहा और रात-दिन यह सब मेरे ही हाथों होता है, लेकिन मुझे बनना नहीं आया । जो पंचम घर पर था, वही यहाँ भी रहा । कुछ न कर पाया ।

गिरधरसिंह मूँछों पर ताव देते हुए बोले—रुपये में यही तो गुण है । मैं तो कहता हूँ कि ईश्वर चाहे और कुछ न दे, किन्तु रुपया ज़रूर दे । तब हमें और कुछ ढूँढ़ने में कोई नष्ट न होगा । पर जब पास पैसा नहीं तो सभी दुःख है ।

पंचम बोला—हाँ भाई । रुपये की ही सब करामात है । तभी न देश छोड़ परदेश में पड़े हैं ।

गिरधर बोला—मुझे और किसी से प्रेम नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, गाँव के नाम से तो मुझे घृणा हो गई है। अपना खाव-पहनाव देखके देखनेवाले जले जाते हैं।

पंचम बोला—हाँ भाई, कही तो मेरे मन की। गाँव में यह रोग तो है। मेरी इच्छा तो गाँव देखने की कभी नहीं होती। खाता हूँ, आराम की नींद सोता हूँ। न कोई चिन्ता, न फ़िकर।

गिरधर—मैं तो गाँव को नमस्ते करके आया हूँ। अब तो यहीं मरना है। चाहे जैसे भी होगा। फिर कौन बीवी-बच्चे बैठे हैं रोने के लिए, जिनकी फ़िक्र की जाय।

बारह का घंटा सुनाई पड़ा। दोनों अपने बिस्तर पर सोने गये।

गिरधर—यार पंचम, बारह बज गये। मालूम भी न हुआ इतनी रात गई है। गाँव में तो सरेशाम ही जैसे सियापा पड़ जाता है।

पंचम—अब सोओ भाई। रात बहुत गई।

दोनों सो गये।

(४)

घर पर जैसे सब कामों में बाज़ी गिरधरसिंह की थी, इस तरह रंडी के घर में भी बाज़ी बाबू साहब के ही हाथ रही। रोज़ नये-नये उत्साह से जाते थे और तरो-ताज़ा होकर घर आते थे।

पंचम आकर बोला—बड़े उस्ताद हो यार। यहाँ भी तुमने बाज़ी मार ली। आज बीबी साहबा तुम्हारी तारीफ़ करती थीं। मुझसे कहती थीं कि तुम अब तक जितने ग्राहक लाये, उन सबों में यह रत्न है। और खुश होकर मुझे पाँच रुपये इनाम के दिये। समझ लो मैंने

भी खूब तारीफ़ों के पुल बाँध दिये। फिर क्या है। मैंने कहा—साहब कोई ऐसे-वैसे आदमी थोड़े ही हैं। बड़े भारी इलाक़े के मालिक हैं। आये हैं दो-चार महीने बम्बई की सैर करने।

गिरधर बोला—सच ! मेरी तारीफ़ करती थीं। नहीं भाई, तुम झूठ बोलते हो।

पंचम बोला—नहीं भई, तुम्हारी क़सम। कहती थीं कि अभी तक जितने ग्राहक लाये हो, उन सबों में यह रत्न है।

गिरधर गुब्बारे की तरह फूल गया, और बोला—इन्हीं सबको देखकर तो आँखें खुलती हैं। ये किसी का दिल लेती हैं तो दिल देना भी तो जानती हैं। नहीं घर में ब्याह कर बीबी लाओ, और खुश करने के लिए जान भी दे दो तब भी मिजाज़ हमेशा बिगड़ा ही रहता है। घर में जाओ तो काटने को दौड़ती हैं। मैं तो भाई, कहता हूँ गार्हस्थ्य जीवन नरक से भी बदतर है। न-जाने कैसे गधे होते हैं, जो जीवित रहते हैं।

पंचम—तभी तो भाई, अब कोई शरीफ़ उसमें नहीं फँसना चाहता। कौन अपनी ज़िन्दगी नरक में डाले।

गिरधर—मैं तो इन रोगों से पहले ही कोसों भागता था और अब की तो कोई बात नहीं है। यार पंचम, सच कहना भाई, तुमने भी इनका कभी प्यार पाया है कि रुपये ही पाते रहे हो ?

पंचम मुँह गिराकर बोला—भाई, मेरे पास रुपये कब थे, और जब रुपये हुए तो इन्हीं के काम से छुट्टी नहीं मिलती। रात की रात तो जागते ही जागते बीत जाती है। दिन को आराम न करूँ तो मर जाऊँगा कि ज़िन्दा रहूँगा। फिर मेरी तबियत यों ही भर जाती है। कभी-कभी

इच्छा हुई, तो औरों के पास गया हूँ। इनके पास फटकने की तो मेरी हिम्मत नहीं होती।

गिरधर बोला—इसमें हिम्मत का क्या सवाल है ?

पंचम बोला—क्यों नहीं ? भाई, जिनका मैं नौकर हूँ, उनसे तो मेरी बोलने की भी हिम्मत नहीं होती और क्या कर सकता हूँ।

गिरधर—तुम हो खासे गावदी।

पंचम—उनके साथ उनकी और बहनें भी तो हैं न ?

गिरधर बोला—भाई, मेरी इच्छा तो होती है कि हरदम सुन्दरबाई के पास बैठा उनका मुँह निहारा करूँ।

पंचम—जवानी के यही तो माने हैं। और क्या रोने का जी चाहेगा ाई—इस उम्र में ?

गिरधर—मेरी समझ में नहीं आता, तुम कैसे अपनी तबियत पर क़ाबू पाते हो।

पंचम—मजबूरी सब सिखला देती है।

गिरधर बोला—मुझे तो पाँच-छः महीने के ये दिन ज़िन्दगी भर नहीं भूलेंगे। लेकिन ये चैन के दिन अब बहुत दिन नहीं चल सकते—अब मेरे पास कुल १००) और हैं।

पंचम मुँह बनाकर बोला—अच्छा, अब खाली हाथ हो गये ?

गिरधर—वही तो कहता हूँ कि अब एक-दो दिन और हैं ये सुख के दिन, बस। लेकिन हाँ, अगर मुझे कहीं काम मिल जाय तो फिर क्या पूछना है। ठीक है न भाई ?

पंचम उदास होकर बोला—भाई, तुमने यह बुरी खबर सुनाई।

गिरधर—उँह, यह तो हुआ ही करता है। इसकी क्या फ़िक्र। मैंने तो सोच लिया है कि रुपये आते ही मैं चटपट सबसे पहले सुन्दरबाई के ही दर्शन करूँगा। और काम जाय चूल्हे-भाड़ में।

पंचम ने घड़ी देखी तो पाँच बज गये थे। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और गिरधर से बोला—भाई, मैं तो जाता हूँ काम पर। आज बातों में ऐसा लगा कि वक़्त का ज़रा भी ख़याल ही न रहा।

यह कहता हुआ वह चला गया।

(५)

आज दो महीने से गिरधर बीमार है। गनोरिया हो गया है। पंचम सिंह का भी कहीं पता नहीं है। किराया-मकान भी तीन महीने से चुकता नहीं किया गया है। आज कई दिन से मालिक मकान आता है और धमकी देकर चला जाता है। गिरधर सोचता है—बस, कल का दिन और। अब तो वह मकान से ज़रूर ही निकाल देगा और जो कपड़े-लत्ते हैं लेकर चल देगा। मैं राह का भिखमंगा बना पड़ा रहूँगा। चलने का बूता भी मुझमें नहीं है कि भीख माँगकर खा लूँगा। वह बार-बार पंचम को कोसता है। फिर सोचता है, मैं पंचम को क्यों कोसता हूँ? पंचम मेरा कौन था? फिर मेरे कर्म ही कौन बड़े अच्छे हैं? हाय! भैया का मारनेवाला हत्यारा तो मैं ही हूँ। उनके सीधे होने का पुरस्कार उन्हें मिला क्या? तड़प-तड़पकर मरना। और सुख भोगा मैंने। तो भला ऐसी आत्मा कभी मुझे क्षमा कर सकती है। उनके बाल-बच्चों को भूखा मारनेवाला पापी मैं ही हूँ। भैया जब मेरे ही भले को सिखाने आते थे, तो मैं उनको काटने को दौड़ता था। हाय भगवान्,

मैं पापी हूँ। शीघ्र ही मेरा अन्त कर दो। यही सब सोचते-सोचते गिरधर को झपकी लग गई। सपना देखता है कि भय्या आये हैं और मुस्करा-कर गिरधर से कहते हैं—सब ठीक ही है। यही हाल तो मेरा भी था। जब मैं रोता था, तू हँसता था। हाँ, क्या मैं रोता था तो मेरी आत्मा नहीं रोती थी—नहीं भाई, मेरी भी आत्मा रोती थी, इसलिए कि मैंने अपने बाल-बच्चों के साथ अन्याय किया था। हाँ, फ़र्क़ मुझमें-तुझमें इतना ही था कि दुनिया मुझे अन्यायी नहीं कहती थी, इसलिए कम दुःख था। तेरे लिए सब हँसते हैं। मैं भी हँसता हूँ। फिर देखता है—माँ और भावज-भतीजा है। माँ कहती है—तुझ नीच ने मेरी कोख से जन्म लेकर मेरे मुँह में कालिख लगा दी है। गिरधर रोकर कहता है—मैं तो खुद ही अपने कर्मों को रो रहा हूँ। क्षमा कर माँ। माँ, साड़ी में से चमचमाती हुई कटार दिखलाकर कहती है—मैंने तो क्षमा करना सीखा ही नहीं। जो लड़का दूध की—माँ के दूध की लज्जा नहीं रखता, उसे माँ कहने का कोई हक़ नहीं है। माँ को उसकी हत्या करने में कोई पाप नहीं है। क्षमा करना ही पाप है; क्योंकि तूने समाज की हत्या की है जो करोड़ों आदमियों की हत्या का बायस है, और उस हत्यारे को जन्म देनेवाली पापिनी मैं हूँ। इसलिए मुझसे क्षमा माँगना व्यर्थ है। जैसे ही माँ अपनी कटार लेकर आगे बढ़ती है, गिरधर की भावज माँ के हाथ से कटार को छीन लेती है, और माँ से बोलती है—माँ, इन्होंने मेरी हत्या की है। इनको मुझसे क्षमा माँगना चाहिए था। किन्तु तुम मेरी भी माँ हो। मैं तुमसे इनके लिए क्षमा चाहती हूँ, ये तो खुद ही अपनी करनी का फल भोग रहे हैं। गिरधर रोकर भावज के पैरों में गिरना

चाहता है। जैसे चारपाई से उठने को होता है, गिर पड़ता है। नींद खुल जाती है।

(६)

कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है। गिरधर दरवाज़ा खोल देता है। सामने दो कानिस्टिबल और वही रोज़वाला मालिक मकान का चपरासी हरखूसिंह सामने मिलते हैं।

हरखू--आज किराया दो। नहीं जो सामान हो, देकर मकान छोड़ दो। अब बहुत भलमंसी हो गई।

गिरधर रोकर बोला—अरे भाई, तुम घर छोड़ने को कहते हो, मैं दुनिया छोड़ने को तैयार हूँ।

हरखू—तेरे जैसा नीच आदमी मैंने आज तक न देखा था।

गिरधर रोकर बोला—हरखू भैया, दो-चार दिन और रहने दो, नहीं बेमौत मर जाऊँगा।

दोनों सिपाही हरखूसिंह से बोले—सेठ साहब ने हम लोगों को हुक्म दिया है कि उसके पास जो सामान हो नीलाम करके उसको आज मकान से बाहर कर दो। मुँह क्या देखते हो?

हरखू गिरधर से बोला—अब क्या सोचते हो?

गिरधर बोला—क्या सोचता हूँ। कुछ नहीं। और मेरे पास रक्खा ही क्या है? मरता क्या न करता, वाली कहावत है।

चपरासी बोला—साला फ़िलासफ़ी बघार रहा है।

जो कुछ था बाहर रखकर नीलाम कर दिया गया, जिसमें मुशकिल

से २०) रुपये हाथ लगे। उसे लेकर सब चले गये, और गिरधर ने अपना नाम 'पथिक' रखा।

(७)

पथिक दिनभर सड़क की पटरी पर पड़ा था, भूखा प्यासा। कुछ फटे हुए गुदड़े बिखरे पड़े हैं। मक्खियों का गोल का गोल उसका हिमायती था—साथी था। कोई राहगीर आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ़ देखता है तो वह जैसे डर जाता है। उस दिन जो सपना देखा था, उसी के विषय में रात-दिन पड़ा सोचा करता है। कभी किसी को दया आ गई तो दो-चार पैसे मिल गये। उसी से खाना खा लेता है। नहीं तो अपनी करनी को सोच-सोचकर रोता है, पछताता है। जहाँ रात हुई, उसकी आँखों के सामने डरावने सपनों का बाज़ार लग जाता है। वह अपने को काल के मुँह के सामने देखता है।

आज पन्द्रह दिन के बाद एक स्त्री उसके पास जाकर बोली—तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है?

पथिक बोला—मैं एक पापी हूँ। मेरा नाम पथिक है और पाप ही मेरा कर्म है।

स्त्री—अगर तुम मेरे झोपड़े में रहना चाहो, तो चलो मैं तुमको लिवा चलूँ। क्या तुम्हारे कोई नहीं है?

पथिक—नहीं माँ, पापियों के कौन हो सकता है। मुझ-जैसों से ईश्वर भी मुँह फेर ले तो कोई अनहोनी बात नहीं।

स्त्री—तुम्हारा घर कहाँ है, कहाँ के रहनेवाले हो?

पथिक—माँ, जहाँ मरने भर को जगह मिले, वहीं मेरा घर समझो।

स्त्री एक डोलीवाले को ले आई और उसी में बिठाकर पथिक को अपने घर लिवा ले गई।

(८)

स्त्री ने पथिक को अपने घर में लाकर पहले तो खाने को दिया।

पथिक बोला—माँ, तुम मुझ पापी पर किस नाते इतनी दया दिखा रही हो?

स्त्री—बेटा, हम सभी पापी हैं। मैं कौन बड़ी धर्मात्मा हूँ। हम सभी पापी हैं।

पथिक—माँ, तुम मेरी आँखों में देवी का स्वरूप मालूम होती हो। मैं तुमको अपनी कहानी सुनाऊँ तो बहुत मुमकिन है, तुम्हें मेरी सूरत से भी नफ़रत हो जाय।

बुढ़िया बोली—बेटा, मेरी भी कहानी बड़ी विचित्र है। यही समझो कि मैं पूरी हत्यारिनी हूँ।

पथिक—माँ, सुना दे अपनी कहानी। मुझे मालूम हो जाय कि मैं ही पापी नहीं हूँ। मुझ-जैसे करोड़ों जीव दुनियाँ में रेंग रहे हैं, जिसमें मेरी ग्लानि की व्यथा कम हो जाय।

बुढ़िया बोली—बेटा, कभी सुना दूँगी। कोई आज ही साइत तो है नहीं। तुम सो जाओ। कई दिन के बाद आज तुम्हें आराम मिला है।

पथिक बोला—अच्छा माँ, जैसा तुम कहोगी, वैसा ही मैं करूँगा। मैं सोता हूँ।

बुढ़िया—हाँ बेटा, जाओ।

कहकर वह बाहर निकल आई।

(६)

आज बुढ़िया कई दिन से बीमार है। और पथिक तो पहले ही से बीमार था। उस पर न दाना न पानी। उसी तरह बुढ़िया भी पड़ी है।

पथिक से बोली—सुन लो मेरी विचित्र कहानी, जो उस दिन कहने को कहते थे।

पथिक बोला—हाँ, माँ, सुना दो।

बुढ़िया—सुनो। मैं एक ठाकुर के घर की स्त्री हूँ। मेरे घर मेरा देवर था और पति था। एक लड़का हुआ। मेरे ससुर पहले ही मर चुके थे और सास मेरे आने के कई साल पर। घर-ज़मीन, गृहस्थी सब कुछ मैं और मेरा पति हम दोनों ने मिलकर बनाया था, क्योंकि मेरा पहले का घर सब स्वाहा हो चुका था। खैर, जब मेरा देवर जवान हुआ—हाँ, एक बात कहना तो भूल ही गई। पति देवर को बेटे से भी ज़्यादा प्यार करते थे। हाँ, जब मेरे देवर जवान हुए, वह मेरे बेटे को बराबर खाना-पहनना भी नहीं देना चाहते थे। इसी पर मुझसे उनसे कभी-कभी दो बातें हो जाया करती थीं। देवर महाशय घर का काम कुछ न करते थे, इसलिए मेरे पति को मुझसे कुछ कहने की हिम्मत न पड़ती थी। कई बार मुझसे और मेरे देवर से झगड़ा भी हो गया और इस झगड़े की जड़ वह अपने भाई को समझकर उनसे अलग होने का प्रस्ताव करने लगे। मेरे पति ने टालना चाहा। लेकिन वह न माने। इस पर पति अलग होने को राज़ी तो हो गये, लेकिन बोले—मैं हिस्सा-बाँट करके कुछ न लूँगा। तू लेकर आराम से रह, मैं अपने बाल-बच्चों को लेकर

खँडहर में पड़ा रहूँगा। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि तू सुखी रह।

घर में मैं भी रूठी रहने लगी, वह काम जी तोड़कर करने लगे। उनका प्राण लेने के लिए बीमारियों ने जैसे होड़ लगा ली। काम की होड़ मेरे पति लगाते और उनका जीवन लेने को यम होड़ लगा रहा था। मेरे पति चाहते थे कि मैं जल्दी से सब पहले-जैसा कर दूँ। लेकिन हथेली पर सरसों नहीं जमता। हाय, वह मुझे कितना डरते थे, जिसमें मैं उनके भाई को कुछ न कहूँ! एक दिन मुझे उनकी हालत पर दया आई—क्रोध भी था, रंज भी था। इसीलिए मैं कभी कुछ बोलती ही न थी। हाय, उस दिन भी क्रोध में दया और दया में क्रोध मिला हुआ था। खैर। मैं बोली—अब क्या करने पर तुले हो? राह की भिखारिन तो बना दिया। साधु ही बनना था तो शादी-ब्याह क्यों किया? हाय, तब वह बोले—मैं तो तुम लोगों को छाती से लगाये हूँ। तुम्हारे ही लिए मरता हूँ। मैंने तब भी चुभती हुई ज़बान से जवाब दिया—तो यों छाती से लगाने से ही क्या निहाल कर दिया? मैं सब जानती हूँ। इतनी बच्ची नहीं हूँ कि तुम्हारी बातों में आ जाऊँगी। जो आदमी अपने खून के बच्चों को प्यार नहीं करता, उनका ज़िम्मेदार नहीं होता, उसकी स्त्री को क्या उम्मीद हो सकती है? मैं भी अपनी क़िस्मत को ठोककर बेफ़िक्र हूँ। उस समय वह रोकर बोले—'सोनिया, मुझे गधा कह ले, बेवक़ूफ़ कह ले, भोंदू कह ले। मुझमें सब ऐब हैं, लेकिन मैं हृदयहीन नहीं हूँ। मैं अब तेरे सामने क़सम खाने योग्य नहीं हूँ। मुझे अब मालूम हुआ कि जिसे मैं न्याय समझता था, वह मुझसे अन्याय हुआ।

•

हाय, मैं बड़ी पापिनी हूँ। मैं फिर व्यंग से बोली—यह सब कहकर सफ़ाई दे दो। दिल में चाहते होंगे कि ये माँ-बेटे दोनों मर जायँ तो फिर अपने चहेते भाई को लेकर मौज करें, यह क्यों नहीं कहते। वह फिर रोकर बोले—सोनिया, मैं इसीसे कभी तेरे सामने मुँह न खोलता था कि तू अब की तरह तब भी मुझ नीच का विश्वास न करती। उसी रात को उन्हें बुख़ार चढ़ा। तीसरे दिन वह तो चले गये, मैं बैठी अपने कर्मों को रोती रही। रोने-गाने का दैन्य ज़्यादा दिन न ठहर सका। मैंने देवर को अपने स्वामी का हत्यारा समझा। सुना था कि वह बम्बई चला गया। मैं भी हाथ में कटार लेकर, बम्बई की तरफ़ बढ़ी। उनका हत्यारा, उनका भाई, मेरा देवर है, उसको मारकर मैं सुखी होऊँगी। यहाँ आने पर मालूम हुआ कि मिल-वालों ने हड़ताल कर दी थी। मेरा बेटा भी उनमें था। मिल-मालिक ने गोली चलवा दी। उस गोली का निशाना मेरा बेटा हुआ, मेरा लाल! अब मेरे दो दुश्मन हो गये। मैंने मिल के मालिक के घर बच्चा खेलाने की नौकरी कर ली। मैं पापिन हूँ। उस बच्चे का पाप लेकर मैं अपने बच्चे के ख़ून का बदला लेना चाहती थी। कई साल रहने पर उस मिल-मालिक का बेटा मोटर से चोट खाकर मर गया। एक ओर मेरी रक्त-पिपासा शान्त हुई, दूसरी तरफ़ मुझे ज्ञान मिला, ज्ञान का प्रकाश मिला। मैं उसमें आलोकित हो उठी। मुझे मालूम हुआ कि ईश्वर ने मुझे माँ की पदवी दी है। वह कर्तव्य पूरा करने के लिए, उसकी ज़िम्मेदारी को कंधा लगाने के लिए। लेकिन, हाय, मुझे यह अक़्ल आई बड़ी देर पर, जब मेरा सर्वस्व, मेरा वंश नष्ट हो चुका था।

मुझको यह भी मालूम हुआ कि अपने पति की हत्यारिन मैं ही हूँ। मैंने स्त्री के रूप में जन्म तो पाया, माँ भी बनी, लेकिन माँ का दिल न पाया। अगर मिला होता तो मैं इस सब पाप की भागी न बनती। स्त्री होने के माने हैं, सारे संसार पर माँ का-सा स्नेह रखना। जिसमें यह स्नेह न हो, उसमें स्त्रीत्व नहीं है, उसे औरत होने का कोई हक़ हासिल नहीं है। फिर देवी महाशक्तियाँ क्यों कहलाती हैं? इसलिए न कि वह संसार को अपने अंचल में, गोद में छिपाकर सब विपत्तियों से उसका बचाव करती हैं। अगर आज उसमें यह बात न रह जाय, तो वह माता के पद से तुरत च्युत हो जाय। हे भगवान्, अब ग्लानि की जलन नहीं सही जाती, कलेजा फटा जाता है।

हाथ में कटार लेकर उसने कहा—रे पापिन, तैंने ही सब हत्या और पाप किया है, आज तेरी लीला का अंत हो जायगा।

गिरधर बोला—माता, तुम्हारा हत्यारा तो मैं हूँ।

बुढ़िया के हाथ से कटार छीनकर वह बोला—तुम आज इसे हृदय के आर-पार कर दो, मेरे पापी नारकीय जीवन का अन्त हो जाय। मैं तुम्हारा उपकार मानूँगा। कहता हुआ वह उसके पैरों में लोट गया।

बुढ़िया बोली—तू हत्यारा नहीं है, तू तो मेरा बेटा है। कहती हुई उसने झुककर गिरधर को छाती से लगा लेना चाहा, लेकिन वह छाती तक आ भी न पाया था कि निश्चेष्ट होकर धड़ाम से गिर पड़ा। मालूम हुआ कि पंछी पिंजड़ा छोड़कर उड़ गया था।

वह भी गिर पड़ी। उसने गिरधर को क्षमा करना चाहा। वह

अपना सब कुछ गँवाकर अब क्षमाशील हो गई थी। लेकिन वह क्षमा गिरधर न सह सका। उसको शोक और ग्लानि का ऐसा धक्का लगा कि वह फिर न उठ पाया और न उसने शायद उठने की इच्छा ही की। उस देवी के चरणों में उसे ज़्यादा सुख मिल रहा था।

ऋण

जगुआ कुर्मी अपनी बात का बड़ा धनी था। वह अपने घर में काम करता, लेकिन जब गाँव में किसी आदमी की ज़रूरत होती तो आग-पानी में पहले वही कूदता। घर में स्त्री थी, चार बच्चे थे; दो लड़की दो लड़के। स्त्री का नाम सुर्जी था। वह अपने पति को बहुत प्यार करती थी और दुःख में सच्ची साथिन थी। सुर्जी बड़ी रूपवती थी।

जग्गू सूर्जी से बोला—क्यों सुर्जी, तू सोचती होगी कि कैसे दलिद्दर के गले बँधी कि न भरपेट खाना, न बरतन-कपड़ा, पर काम रात दिन—क्यों न?

सुर्जी हँसकर बोली—क्या अभी तक बैठे-बैठे यही सोचते थे!

जग्गू बोला—सोचता क्या था, कहता हूँ।

सुर्जी—मेरी ही थोड़ी यह गत है। यह तो सारे गाँव को लागू भगवान जी की यही मरजी है तो रोना किस बात का। क्या मैं देखती नहीं हूँ कि रात-दिन मेरे से ज़्यादा तो तुम काम करते हो ? क्या खाते, क्या पहनते हो, देखती हूँ तुम्हारी हड्डी निकल आई है ? हम लोगों ने जो पहले जन्म में पाप किया है, उसको भोग किये बिना छुट्टी थोड़े मिलेगी।

जग्गू बोला—सुर्जी, सब की यही हालत नहीं है। मैं जानता हूँ, शहर रोज देखता हूँ। काशी जी में दिन भर सोना बरसता है, एक-एक का ठाट-बाट देखकर अपने ऊपर क्रोध आता है कि सब से ज्यादा पापी हमी लोग हैं। पाप-पुण्य कुछ नहीं है, 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' वाली कहावत है।

सुर्जी बोली—काशी जी का ठाट-बाट देखोगे कि पटवारी महतो का हिसाब ? वह परसों मुझसे बोले कि सुर्जी गुड़ बेचकर रुपए देगी कि नहीं, तो मैं कह आई हूँ कि क्यों नहीं दूँगी, परकी साल बैल नहीं मरा होता तो हिसाब में जरूर देती। तब तुम्हारा नाम लेकर कहने लगे, पहले तो वह हिसाब-किताब में बहुत सच्चा था, किन्तु अब मैं देखता हूँ कि उसने भी गाँव की रीति सीख ली है। तब मैं बोली, महतो जब हाथ में पैसा होता है, तब सब कोई चाहता है कि जिसका लेना-देना हो साफ हो जाय। लेकिन जब हाथ में पैसा नहीं होता तब अपना क्या वश ; फिर एक बात और भी है, एक के तीन तो हमी को भरना पड़ेगा, इसमें सच्चा-झूठा बनने की क्या ज़रूरत। तब महतो बोले कि अपने आदमी को भेज देना। नहीं दे सकता तो कागद तो नया करवा ले।

जग्गू बोला—पटवारी भैया समझते हैं कि मैं जमा मार जाऊँगा और मेरे जी में लगा है कि कब रुपया हाथ में आये कि देकर उऋण होऊँ। रात-दिन चैन नहीं पड़ती।

सुर्जी बोली—मैं तो उनके मुँह पर कह आई हूँ कि जब हाथ में पैसा नहीं रहता तभी झूठा बनना पड़ता है।

जग्गू बोला—भगवान जी ही न यह सब करवाते हैं।

सुर्जी बोली—चलो खाना खा लो, यह एक दिन का रोना थोड़े ही है।

जग्गू खाना खाकर सोने चला गया, क्योंकि तीन बजे उठकर फिर ऊख पेरना था।

(२)

आज जग्गू को हैज़ा हो गया, सुर्जी और उसकी बड़ी लड़की दुखनी सबकी बताई हुई दवा करते हैं। गाँव के आदमी भी दौड़-धूप करते हैं, लेकिन सब दवा-दारू व्यर्थ जाते हैं।

जग्गू अपनी स्त्री से बोला—सुर्जी देख, अब मैं नहीं बचूँगा। हाय ! पानी। सुर्जी पानी लेकर आई। अधखुली आँखों से देखकर जग्गू बोला—देख सुर्जी, अब मैं नहीं बचूँगा। पटवारी लाला का रुपया, ऋण ३००) है। अब बोल, मैं कैसे उऋण होऊँगा।

सुर्जी रोकर बोली—कैसी बातें करते हो ? तुम अच्छे हो जाओगे।

जग्गू बोला—नहीं सुर्जी, अब नहीं बचूँगा, बहुत कष्ट है। हाय ! मैं वहाँ भी बन्धन में रहूँगा, ऋण को कैसे भरूँगा। सुर्जी, मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता जो कि मेरे इस दुख में सहायता करता। घर-द्वार

बेचकर भी दे सकता तो मैं सब देने को तैय्यार हूँ। हाय ! भगवन् कैसे इस पापी को उबारोगे ? आह ! भगवान् बहुत कष्ट है।

सुर्जी बोली—क्या पेट में बहुत दर्द है ?

जग्गू बोला—हाँ, दर्द जो है सो हई है, ऋण का बोझ सबसे ज़्यादा दर्द पैदा करता है।

सुर्जी रोकर बोली—तुम क्यों ऋण के लिए परेशान होते हो ? मुझ पापिन को तो छोड़े जाते ही हो। मैं जब तक जिन्दा हूँ, कर्जा चुकाऊँगी। वह कर्जा अब तुम्हारा नहीं, मेरा है।

जग्गू की आँखों में थोड़ी देर के लिए चमक आ गई, गर्व से मस्तक अपने आप उठ गया और सुर्जी से बोला—तुम मेरी देवी हो! मैं तुम्हारा ऋण लेकर जाता हूँ और अगले जन्म में बड़ी ख़ुशी से भरूँगा। बस अब चलता हूँ। अगले जन्म में फिर मिलूँ, यही इच्छा है और इच्छा है कि तुम्हारी जैसी देवी के चरणों की सेवा करूँ।

सुर्जी रोकर बोली—मुझ पापिन की याद रखना। तुम्हारे बिना मेरा संसार ही सूना है।

जग्गू बोला—मेरी आत्मा तुम्हारे साथ रहेगी। यही कहते-कहते उसका प्राण निकल गया।

सुर्जी रोकर बोली—चलो मेरी भी बारी कभी आयेगी!

(२)

जब से सुर्जी का पति मर गया है, तब से उसकी यही एक लौ है कि ऋण अदा हो जाय।

सबसे बड़ा लड़का बुधुवा है। रजिया बड़ी लड़की का नाम है।

तीन आदमी तो खेती के काम में लगे। दो लड़के-लड़की को गाँव के मवेशी चराने का काम मिल गया। दोनों भाई-बहन दिन भर मवेशी चराते और गोबर घर पहुँचाते।

पटवारी लाला हर दिन उसके दरवाज़े पर हाल-चाल पूछने जाते।

पटवारी ने पूछा—क्या हाल-चाल है सुर्जी ?

सुर्जी—क्या हाल है महतो, तुम्हारा रुपया देना है, और मजूरी करनी है ; और क्या हाल है।

पटवारी बोले—मेरे रुपये की कौन फ़िक्र है। लड़के ज़िन्दा रहेंगे तो भर ही देंगे। मैं कहता हूँ, तैं क्यों मरती है। रात भर आटा पीसती है, दिन भर काम करती है। इस तरह की मजूरी करके कै दिन चलेगा।

सुर्जी आँखों में आँसू भर कर बोली—महतो, कुर्मी के घर में जन्म लेकर कब तक काम से भाग सकती हूँ ?

लाला जी बोले—भागने को नहीं कहता हूँ। मेरे ही घर में एक स्त्री के लिए दिन भर का काम है। मैं चार पाँच रुपया महीना, खाना और कपड़ा दूँगा। सिर्फ़ दिन भर औरतों के साथ में रहना और बच्चों की देख-भाल करना है।

सुर्जी बोली—महतो, काम तो बुरा नहीं है। अन्तर सिर्फ इतना है कि यह घर का काम है, वह मजूरी है।

लाला जी बोले—सोच ले। तुझे बारह से कम नहीं पड़ेंगे। फिर तू जब मेरे घर में काम करने लगेगी, तो मैं तेरे रुपये पर सूद भी नहीं

लगाऊँगा। दो-तीन साल में तेरा रुपया भी भर जायेगा। घर का काम तेरे बच्चे सब करते ही हैं।

सुर्जी बोली—महतो, तुम्हारा कहना सब ठीक है। लेकिन हम सबों की जात में किसानी अच्छी समझी जाती है। मजदूरी फिर भी मजदूरी है चाहे एक की हो चाहे लाख की। फिर अब मुझे जोड़ने की लालसा भी नहीं है। मैं तो अपने को सोचती हूँ कि जिस दिन मेरा ऋण चुकता हो जाय, उसी दिन मेरी साँस भी चुकता हो जाय तो मैं ईश्वर को धन्यवाद दूँगी।

लाला जी बोले—पगली कहीं की! अभी कल की लड़की, मरने की सोचने लगी। दुनिया में सुख नहीं है तो क्या मरने में सुख है; पगली!

सुर्जी रोकर बोली—महतो, अब मेरे लिए दुनिया में सुख नहीं है; मरने में सुख है। जिसे कोई पूछने वाला नहीं है, उसे सुख कहाँ?

लाला जी—मैं हूँ तुझे पूछने वाला। तू निराश क्यों होती है?

सुर्जी आखों में आँसू भर कर बोली—हाँ महतो, अब तुम्हीं सबका भरोसा है कि मेरे और कोई बैठा है?

लाला जी बोले—देख, कोई तकलीफ़ न करना। जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, मेरे कान जो ख़बर पड़ेगी, मैं तैयार हूँ।

सुर्जी बोली—तुम्हीं सब से नहीं कहूँगी, तब फिर मेरे कौन बैठा है।

लाला जी अपनी जीत समझते हुए गर्व से सिर ऊँचा किये घर आये।

सुर्जी लाला लोगों को ख़ूब जानती थी, क्योंकि इसी गाँव में वह भी रहती थी। वह सोचती, देखो, यह सब कैसा मुफ़्त का जस लेते हैं।

(४)

चैत का महीना था। सुर्जी अपने खेत में अरहर काटने पहुँची। चार बजे का समय था। सुर्जी के हाथ में हँसिया थी। कुछ ही देर सुर्जी ने खेत काटा होगा कि लाला जी भी खेत में पहुँचे और सुर्जी से बोले—क्यों सुर्जी, मुझे कब तक जलाती रहेगी? मैं तुझे हृदय में रखे-रखे जलता हूँ और तू अपनी दूसरी दुनिया की सैर करती रहती है। अब मुझसे नहीं सहा जाता। आज मैं तुझसे खुल कर बात करने आया हूँ। या तो मेरी आशा पूरी कर, या मुझे क़त्ल करके हमेशा के लिये शान्त कर दे, क्योंकि अब नहीं सहा जाता।

सुर्जी लाला जी की बात सुन कर सहम गई। फिर साहस बटोर कर बोली—क्या कहते हो महतो? मैं तुम्हारी बातें नहीं समझती।

लाला जी बोले—क्यों सुर्जी, तू नहीं समझती है? क्या मुझसे खोल कर कहलाना चाहती है। अच्छा तो सुन, मैं कहता हूँ। मैं तुझे चाहता हूँ, जी-जान से चाहता हूँ; तेरी जैसी रानी को अब नहीं छोड़ सकता। जो माँग, मैं सब दूँगा। तेरे लिए जान भी हाज़िर है।

सुर्जी ने कहा—महतो, मैं तुम्हें अपना पिता मानती हूँ और इस नाते कहती हूँ कि तुम भी मुझे अपनी बेटी ही मानो। मैं सब तकलीफ़ सहने को तैयार हूँ, लेकिन इज्जत की रक्षा जान देकर भी करूँगी क्योंकि यह मेरे पति की अमानत है। इज्जत को मैं दुनिया की सब चीजों से, यहाँ तक कि ईश्वर से भी बढ़कर मानती हूँ। इसको खोकर मैं जिन्दा नहीं रह सकती।

लाला जी सुर्जी का उपदेश सुन कर क्रोध में आकर बोले—

चुप भी रह ! नीच ज़ात के लोग सीधे थोड़े ही कुछ सुनते हैं।

सुर्जी को भी क्रोध आ गया, बोली—महतो, मैं नीच हूँ तो तुम्हें तो कुछ कहती नहीं। फिर नीच मैं हूँ कि तुम, जो पराई स्त्री को बेइज्जत करना चाहते हो?

लाला जी का क्रोध से मुँह लाल हो गया। हाथ फैला कर बोले—देख नीच हूँ तो आज तुझे नहीं छोड़ूंगा। साथ ही साथ लाला जी कुछ ऐसे शब्द भी कहते थे, जिनका सुनना सुर्जी की सहन-शक्ति के बाहर था।

सुर्जी के हाथ में हँसिया थी, बोली—चुप रह नीच कहीं का! हमारा ही खून चूस कर मोटा हुआ है और हमीं को नीच बनाता है, और इज्जत लेने पर तुला है!

यह कहकर सुर्जी ने एक हाथ हँसिया का चला ही तो दिया। पहले ही वार में लाला जी की नाक भक् से उड़ गई। खैर, शोर-गुल हुआ, गाँव के लोग भी पहुँच गये। सब हाल जान कर और लाला जी की नीचता का तफ़सीलवार ब्यौरा सुन कर लोग बड़े खुश हुए। लाला जी को लाद-फाँद कर घर लाये।

(५)

अब गाँव में दो दल हो गये, एक लाला लोगों का और दूसरा कुर्मियों का। कुर्मी लोग सुर्जी से कहते थे कि अब तेरा गाँव में रहना मुश्किल है। स्त्रियाँ सुर्जी को उसके साहस पर बधाई देती थीं। सुर्जी का भाई भी उसी रात को आया था। वह भी खड़ा मुस्करा रहा था।

रात को सुर्जी का भाई बोला—इस गाँव से अब भाग चलना चाहिए।

सुर्जी बोली—भागूँ क्यों ? मैंने कोई पाप थोड़े ही किया है कि भागूँ ? मैं तो सरकार के सामने साफ कह दूँगी कि मैंने वार अपनी इज्जत बचाने के लिए किया। इस पर सरकार फाँसी देगी, तो लटक जाऊँगी। इसका क्या ? इस पापी के राज में मैं रहने को तैयार भी नहीं हूँ।

भाई बोला—सुर्जी, मैं तेरे साहस की तारीफ करता हूँ। तूने मेरा ही नहीं, बल्कि अपने दुश्मन का भी सर ऊँचा किया है। मरना-जीना तो लगा ही रहता है।

सुर्जी ने कहा—भाई, मैं कुछ नहीं जानती। मुझे क्रोध आया। जो कुछ मुझे सूझा, मैंने किया। इस पर मुझे जो सजा मिलेगी, मैं सहने को तैयार हूँ। फिर मुझे अपनी जान भी प्यारी नहीं है ! इज्जत प्यारी है। मेरे ऊपर ऋण न होता, तो मैं आत्महत्या कर लेती ; क्योंकि दुनिया में मुझे कोई सुख नहीं है।

(६)

उधर लाला लोग चाहते थे कि थाना-पुलिस किया जाय। लेकिन करते डरते थे, क्योंकि कुसूर अपना था, नौकरी छूटने का डर था। मामला दब गया।

लाला जी की स्त्री ने भी दिल से सुर्जी की सराहना की।

स्त्री ने कहा—तुम जैसे नीचों को यही सज़ा ठीक थी।

लाला जी बोले—चुप रहेगी कि नहीं। जले पर नमक छिड़कती है। शरमाती नहीं, और बकती है।

स्त्री—मैं क्यों शर्माऊँ। शर्माओ तुम, जो एक स्त्री के हाथों नाक कटवा आये हो। मुझे तो खुशी है कि मैं हूँ चाहे मेरी बहन, किसी ने अपनी इज्ज़त बचाने के लिए साहस तो दिखाया।

लाला जी अपनी हार जानकर चुप हो गये। स्त्री भी चुप होकर सो गई।

(७)

आज सुर्जा बड़ी खुश है। आज उसने अपने पति का ऋण अदा करके मुक्ति पाई है। वह बड़े-छोटे सब के पैर पड़ती है।

एक बूढ़ी औरत ने कहा—बेटी सुर्जा, तूने बड़ी तपस्या की है, तेरे बदन पर मैंने आज तक कभी साबित कपड़ा नहीं देखा। भगवान तुझे तेरी इस तपस्या का फल जरूर देंगे।

सुर्जा रो पड़ी। अभी तक उसे रोने को फ़ुर्सत न थी, क्योंकि रोने से और काम अटकता था।

सुर्जा रोकर बोली—माँ, मैं बड़ी अभागिन थी। लेकिन आज भाग्य-वती हो गई। आज मैं उस ऋण से उऋण हुई हूँ जो मेरे पति मेरे विश्वास पर छोड़ गये थे।

बूढ़ी बोली—बेटी, तूने हम सबों की लाज रख ली है। अब तो बच्चे हाथ-पैरवाले हो गये हैं। अब बेटे का ब्याह करके आराम से सुख की रोटी खाओ। तूने तो अपनी लाख की देह राख करके अपना कर्तव्य पाला है।

सुर्जा बोली—माँ, अभी मत कहो। जब इसी तरह मर जाऊँ तब कहना। अभी तो नहीं मालूम क्या भोगना बदा है।

बूढ़ी आसमान की तरफ़ देखकर बोली—बेटी, सब भगवान जी के हाथ है। और अपने घर चली गई।

(८)

आज सुर्जी बहुत बीमार है। घर और गाँव के लोग जमा हैं। सुर्जी ने अपने लड़के से कहा—देखो बेटा, मेरे ऊपर बूढ़ी काकी का ऋण है, सो उन्हें बुला लो। उनका ऋण दे दूँ, तुम्हारे ब्याह में लिया है। मैं अब नहीं बचूँगी।

बूढ़ी काकी उसी जगह बैठी थी। बोली—बेटी, तुम मेरे ऋण की फ़िक्र छोड़ दो। राम का नाम लो।

सुर्जा बोला—नहीं माँ, ऐसा न कहो। ऋण को साथ लेकर चलूँ, यह नहीं हो सकता।

सुर्जी रजिया से बोली—देख बेटी, हाँड़ी में गहने गाड़े हैं, सो माँ को दे दो। तौला दो, कम पड़े तो देख लूँ।

रजिया गहनों की हाँड़ी लेकर आई और माँ से बोली—माँ, बूढ़ी काकी को दे दूँ?

माँ—देख बेटी, तौला लो। दो-चार रुपया कम पड़े तो उसका इन्तजाम करना पड़ेगा, क्योंकि मैं अब अपने साथ ऋण की गठरी लेकर नहीं जाना चाहती।

बूढ़ी रोकर बोली—बेटी, तू तो अपना बना कर जाती है; हम सबों का क्या हाल होगा?

सुर्जी बेहोश हो गई। बेहोशी ही में बकती रही—मुझे उऋण कर दे माँ, मुझे उऋण कर दे माँ! हाय स्वामी, तुम्हें मुझे छोड़े बहुत दिन

हो गये। आज आए हो, मैं तुम्हारे साथ ज़रूर चलूँगी! मैं सच कहती हूँ, जब से तुमने मुझे छोड़ा, मैंने बहुत कष्ट भोगे हैं। हाय, आज जब मैं खुद चलने को तैयार हुई, तो तुम भी मुझे लेने पहुँचे। तुम तो वहाँ जाकर राजा हो गये, लेकिन मेरी कभी सुध न ली कि उस दुखिया पर कैसी बीतती है। मैं पहले तो तुम्हें कभी ऐसा निठुर नहीं समझती थी। जब तुम निठुर हो गये तो मैंने भी दिखला दिया कि कब तक निठुर बने रहते हो। आखिर आज तुम्हें हार खानी पड़ी कि नहीं। तुम्हीं को आना पड़ा। इसके पहले आते तो शायद मेरी कुछ मदद भी करते, अब आये हो झूठा व्यवहार दिखलाने। मैं इसे प्यार नहीं कह सकती। मैं तो तुम्हें प्यार करती थी और अब भी करती हूँ, लेकिन तुमको मेरा दुःख देख कर भी दया नहीं आती। तुमने शायद पसीजना सीखा ही नहीं। हाँ, मैं तुमसे कहने को भूल गई थी। देखो, मेरे ऊपर ऋण है। तुम मुझसे घृणा करते होगे। नहीं-नहीं, अभी मैं नहीं जाऊँगी।

बूढ़ी काकी रोकर बोली—सुर्जा, तेरा ऋण अदा हो गया है। भगवान जी तुझे शान्ति दें।

सुर्जा को ऋण से उऋण होने की बात सुखद प्रतीत हुई। बोली—माँ तुम मुझ पापिन को धोखा तो नहीं देती हो?

बूढ़ी—नहीं सुर्जा, धोखे की बात नहीं है।

सुर्जा के मुख-मण्डल पर लाली दौड़ गई, जो कि अन्तिम ज्योति थी, बोली—अब मुझे ऋण से मुक्ति मिली। अब मैं जाती हूँ।

बूढ़ी बोली—देख सुर्जा, तेरे बच्चे रोते हैं, कुछ इनको भी कह दे।

सुर्जा ने कहा—मेरे हँसने में दुनिया रोती है, और रोने में हँसती

है। किसे अपना समझूँ? सब लोकधन्धा है। चलनेवाला चल बसा, रोनेवाला झूठा है!

सुर्जा की अन्तिम साँस आई, और उसने कहा—अब मुझे ऋण से मुक्ति मिली।

यही कहते हुए सुर्जा ने अपना खेल खतम करते वक्त मुस्करा दिया।

नमक का ऋण

मुंशी संगमलाल के घर में बिहारी भी उसी तरह रहता है, जैसे घर के और आदमी। कोई उसे नौकर न समझता था और न उसके साथ नौकरों का-सा बर्ताव करता था। संगमलाल के दादा आज चालीस साल हुए, इसे किसी गाँव से अपने साथ लाए थे। तब इसकी उम्र दस साल की थी। अनाथ था। दादा के मरने पर बिहारी संगमलाल के पिता के साथ रहा और अब पिता के मरने पर दस साल से संगमलाल के साथ था। यहीं बिहारी का विवाह हुआ, यहीं उसके लड़के पैदा हुए, और यहीं वह अपने मरने की बाट देख रहा था।

लेकिन दैवगति, मरना चाहिए किसको, मरा कौन! बिहारी तो

साठ साल की अवस्था में घर का काम धन्धा करता ही रहा, संगमलाल चालीस ही की अवस्था में चलते बने।

• • •

क्रिया-कर्म हो जाने पर, एक दिन संगमलाल की पत्नी प्रतिमा ने बिहारी को बुलाकर कहा—दादा, तुम कहीं दूसरी जगह नौकरी कर लो। मेरे लिए तो इन दोनों बच्चों का पालना मुश्किल हो रहा है।

बिहारी आँखों में आँसू भर कर बोला—क्या मैं यह बात नहीं जानता बहूजी; लेकिन जब सारी उमिर आपकी सेवा टहल में काटी, तो अब कहाँ जाऊँ? आपका नमक खाकर पला हूँ; आपकी सेवा में मर भी जाऊँगा। भैया संगमलाल को मैंने अपनी गोद में खेलाया था। वह तो चले गए, मैं अभी बैठा हूँ। भगवान की लीला है!

प्रतिमा ने कहा—मेरी क़िस्मत का खेल है दादा, और क्या।

बिहारी आँसू पीता हुआ बोला—मैंने भैया से हँसी में एक दिन कहा था, मैं मर जाऊँ, तो मेरे नाम पर एक कुआँ खुदवा देना।

भैया हँसकर बोले—तुम अभी नहीं मरोगे दादा। वही बात सच निकली बहू। मैं ठोकर खाने को बैठा हूँ, और जिसके जाने से राज सूना हो गया, वह चल दिया।

दोनों फिर रोने लगे।

उस दिन से प्रतिमा ने फिर बिहारी से यह प्रस्ताव न किया। बिहारी किस स्वभाव का आदमी है, यह आज उसे पूरी तरह मालूम हुआ। बिहारी एक-एक पैसे की किफ़ायत करता रहता था। जीविका का एक-मात्र साधन, एक मकान का केराया था। इसी तीस रुपये में बिहारी

सारी गृहस्थी को ऐसी खूबसूरती से चलाता था कि प्रतिमा इसकी दूनी रक़म में भी न चला पाती। प्रतिमा चार आने की कोई चीज़ मँगवाती, तो बिहारी उसे दो ही आने में लाता और दो आने लौटा देता। चक्की में आटा पिसाने ले जाता, तो चक्की वालों का कुछ काम करके उसकी मजूरी में आटा पिसवा लेता। पैसे बच जाते। लकड़ी भी वह प्रायः टाल पर लकड़ी फाड़कर मजूरी में लाता। इसी तरह अवसर निकालकर वह महल्ले वालों के छोटे-मोटे काम करके आने दो आने पैसे कमा लेता और उससे बच्चों के लिए मिठाई या खिलौने लाता।

बिहारी की धोती फटकर तार-तार हो गई है। कुरता भी फट गया है। प्रतिमा ने कई बार कहा—रुपये ले जाओ और अपने लिए धोती और कुरते का कपड़ा लाओ। बिहारी हर बार टाल जाता था।

एक दिन प्रतिमा ने उसे तीन रुपये दिए और ज़ोर देकर कहा—आज तुम्हें कपड़े लाने होंगे। रोज़ टाल जाते हो। आदमी रोटी-कपड़े के बिना थोड़े ही रह सकता है। विपत हो या संपत, खाना पहनना भी कहीं छूटता है?

बिहारी देख रहा था कि प्रतिमा की साड़ी भी पहनने के लायक़ नहीं है। फिर वह अपने लिए धोती कैसे लाये। रुपए लेकर गया और एक जोड़ा धोती प्रतिमा के लिए लाया, और उसे देकर बोला—इसे तुम पहनो बहूजी, अपनी पुरानी धोती मुझे दे दो, अभी मेरा काम उसी से चल जायगा।

प्रतिमा ने झुँझलाकर कहा—मैंने तो तुमसे अपनी धोती लाने को नहीं कहा था। मुझे घर में कौन देखने आता है। फटी-पुरानी पहन कर

भी एक-दो महीने कट सकते हैं। तुम्हें बाज़ार-हाट करना पड़ता है। इस तरह फटे-हालों देखकर लोग क्या कहते होंगे। फिर मेरी धोती तुम्हारे पहनने जोग नहीं है।

बिहारी—मेरे लिए आपकी छोड़ी धोती ही अच्छी है बहू जी! जैसा मैं हूँ, वैसी धोती है। तुम्हारे दिन फटी-पुरानी पहनने के नहीं हैं। मुझे कौन; किसी तरह दिन ही तो काटने हैं। भैया के राज में बहुत ओढ़-पहन चुका।

प्रतिमा इसका क्या जवाब देती?

• • •

प्रतिमा का लड़का रामनाथ दस साल का था। मदरसे पढ़ने जाता था। एक दिन मदरसे से आया तो रो रहा था। घुटना लहू-लुहान हो गया था। प्रतिमा ने पूछा—क्यों रोते हो बेटा? और यह घुटना कैसे फूट गया?

रामनाथ और ज़ोर से सिसकने लगा।

प्रतिमा—किसी ने मारा है तुम्हें?

रामू ने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई।

'क्या हुआ था?'

'मैंने तो कुछ नहीं किया। मैं अपनी राह आता था। बस तीनों लड़कों ने मिलकर मुझे मारा।'

'अरे तो बेकसूर? तुमने उन्हें गाली-वाली तो नहीं दी थी?'

'मैं किसी को गाली नहीं देता। बल्ली ने मेरी पेंसिल चुरा ली थी।

मैंने पण्डित जी से शिकायत कर दी। पण्डितजी ने उसे पीटा। बस इसी पर वह और उसके दोनों साथी मुझसे बिगड़ गए।'

बिहारी लड़के के घुटने का ख़ून देखकर जैसे बावला हो गया। बोला—चलो मेरे साथ, मैं उन लड़कों से पूछूँ। एक-एक के कान उखाड़ लूँगा। पीछे जो कुछ होगा देखा जायगा। भैया मर गए हैं; बिहारी अभी जीता है।

प्रतिमा—जाने दो बाबा! इसने भी कोई उपद्रव किया होगा। यह कहीं के देवता नहीं हैं।

मगर बिहारी ने एक न सुनी। रामू का हाथ पकड़े सड़क पर जा पहुँचा। संजोग से लड़के वहाँ न मिले।

उस दिन से बिहारी रामू को मदरसे पहुँचा आता और छुट्टी के समय जाकर साथ लाता। एक दिन उसे बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ा हुआ था; पर उस दशा में भी वह रामू को साथ लेने गया। प्रतिमा मना करती ही रह गई।

• • •

एक दिन बिहारी की स्त्री जगिया आकर पति से बोली—तुम घर क्यों नहीं आते? जब मालिक जीते थे, तब तो तुम रात को घर रहते थे और अब जब एक पैसा तलब नहीं मिलती, तब घर तुम्हारी सूरत तक नहीं दिखाई देती। बताओ, घर का काम कैसे चले?

बिहारी बोला—घर का काम तुम चलाओ और तुम्हारा लड़का सयाना हो गया है, वह चलाए। मैंने जो नमक खाया है, वह अदा कर रहा हूँ।

'तो अब तुम से घर से कोई वास्ता नहीं ?'

'नहीं ।'

'अगर मुक्ति ही बनानी है, तो कहीं तीरथ करने क्यों नहीं चले जाते ? अच्छा नमक है ! क्या तब कोई खेत से देता था ? तब भी काम करके ही पाते थे ।'

'बहुत बक-बक मत कर । जिस लड़के को तूने पैदा किया, उसके सिर पर क्यों नहीं बैठती, क्यों काम करती है ? जानती है, सबसे बड़ा तीरथ क्या है ? जिसके नमक से पला, उसके काम में यह हड्डी भी लग जाय, तो मैं अपना तीरथ कर चुका !'

जगिया बिगड़ कर बोली—तो मैं सोच लूँ कि तुम मर गए ?

'हाँ, यही सोच ले कि मैं मर गया । तेरे लिए अपना धरम न छोड़ूँगा । भगवान के दरबार में मुझे अकेले ही जाना पड़ेगा । तुम मेरे साथ न जाओगी ।'

जगिया चली गई ।

आज बिहारी कई दिन से बीमार है । प्रतिमा दवा-दारू कर रही है । रामू भी दौड़-धूप में लगा हुआ है ।

बिहारी ने आँखें खोलीं, तो देखा—प्रतिमा बैठी रो रही है । क्षीण स्वर में बोला—बेटी तुम न रोओ, मैं अच्छा हो जाऊँगा । भैया (रामू) बड़े हो जाते और बिटिया का ब्याह देख लेता, तब खुशी से मरता ; लेकिन अपना क्या बस है । देखो, घबड़ाना मत, मैं जल्दी अच्छा हो जाऊँगा ।

प्रतिमा ने सिसकते हुए कहा—तुम मेरे धर्म के पिता थे दादा, नहीं विपत में कौन किसी का साथ देता है ।

उसी वक्त जगिया और उसका लड़का डोली लेकर उसे लेने आये। जगिया बोली—अब तो अपने घर चलोगे, या अभी कुछ कसर है ?

बिहारी—मेरा घर यही है भाई, क्यों मुझे दिक़ करती है ? मैं कहीं न जाऊँगा। इसी घर में पला हूँ, इसी घर में मरूँगा।

जगिया और उसका लड़का बड़ी रात तक बैठे रहे लेकिन बिहारी जाने पर राज़ी न हुआ। जब रात के बारह बज गये तब एक बार लड़के ने फिर बिहारी से चलने को कहा।

बिहारी बोला—तुम दोनों नाहक मेरे पीछे पड़े हो। मैं अभी थोड़े ही मरा जाता हूँ।

लड़का—यहाँ तुम्हारे कारण बहूजी को भी तो तकलीफ होती है। इस वक्त चलो, अच्छे हो जाना तो चले आना।

बिहारी ने सिर हिलाया।

जगिया बेटे से बोली—चलो भैया, मुझे तो इन्होंने पहले ही समझा दिया है।

दोनों चले गये। लड़का निराश होकर, बुढ़िया रूठ कर। प्रतिमा अब भी वहीं बैठी थी। प्रतिमा को वह रात याद आती थी, जब उसके पतिदेव सिधारे थे।

सहसा बिहारी रामू की ओर देख कर बोला—भैया, देखो उस ताख पर खुरपी रखी है, उठा लाओ।

प्रतिमा की छाती धक्-धक् करने लगी, बोली—खुरपी क्या होगी बाबा ?

'लाओ तो बताऊँ, काम है।'

रामू खुरपी उठा लाया और बोला—ले आया बाबा, अब क्या करूँ ?

'मेरे सिरहाने जो एक ईंट रखी हुई है, उसके नीचे खोदो।'

रामू ने मुश्किल से एक बालिश्त ज़मीन खोदी होगी कि एक बटली निकल आई, जिसका मुँह कटोरे से बन्द था। रामू ने बटली निकालकर बिहारी के सामने रख दी और बोला—यह बटली निकल आई दादा!

बिहारी के निस्तेज मुख पर हलका-सा रंग आ गया, मानो उसके जीवन की अन्तिम अभिलाषा पूरी हो रही है। बोला—बेटी, इस बटली को रख लो। इसमें जो कुछ है, वह दोनों बच्चों के लिए है।

प्रतिमा ने रोकर कहा—इन सबों को आशीर्वाद दो दादा कि अच्छे रहें और मुझे कुछ न चाहिए। तुम्हारा असीस बहुत है। भगवान न करें, लेकिन मैं तुम्हारा क्रिया-कर्म उसी तरह करूँगी, जैसे घरवालों का किया। तुमसे इस जीवन में उरिन नहीं हो सकती।

बिहारी बोला—यह क्या कहती हो बेटी, मैं तुम्हारे नमक से पला हूँ। मेरे एक-एक रोयें में तुम्हारा नमक है। मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है, और जब तक शरीर में जान है, बिहारी तुम्हारा है। देखो बेटी, तुमने कभी मेरी बात नहीं टाली। अब मरते हुए बिहारी की बात न टालो, नहीं मैं सुख से न मरूँगा। और मैं तुमसे कैसे उरिन होऊँ। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है। इस रुपए को बिट्टी और भैया के व्याह में खरच करना। बस अब मुझ दास को अपने मुँह से कह दो कि तुम उरिन हो। देखो मेरे क्रिया-कर्म में एक पैसा भी खर्च न करना बेटी, नहीं मेरी आत्मा को दुःख होगा।

प्रतिमा भरे हुए गले से बोली—तुम मुझसे उरिन हो गये दादा!

बल्कि मैं तुम्हारी रिनी हूँ। बस मेरी एक बात मान लो, मैं इस रुपए का आधा काकी को दे दूँगी। उसके भी तो लड़का है।

बिहारी की साँस उखड़ रही थी। रुक-रुक कर बोला—नहीं बेटी, जिसे उरिन कर दिया, उसे बाँधो मत, मुझ पर दया करो। बिटिया को भी बुला लो, धीरे से जगाना। दोनों लड़कों को प्यार कर लूँ।

रामू बड़े ध्यान से देख रहा था कि देखें दादा कैसे मरते हैं। वह तैयार बैठा था कि मौत उनकी जान लेने आवेगी, तो उसे दूर ही से भगा देगा। उसके दादा को ले जाने वाली मौत कौन होती है। रानी होगी, तो अपने घर की होगी।

प्रतिमा बिट्टी को जगा लाई। बिहारी ने दोनों बच्चों के सिर पर हाथ रखकर रुँधे हुए कंठ से आशीष दिया—भगवान तुम दोनों को सुखी रखें! फिर उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। जीवन का बाँध टूट गया।

प्रतिमा ने उसके चरणों पर सिर रखकर कहा—दादा, तुम तो चले; मुझे क्या कहते हो? कुछ उपदेश न दोगे?

बिहारी बहुत कष्ट से बोला—तुम्हें यही कहता हूँ बेटी कि इन बच्चों को लेकर घर में पड़ी रहना। सिर पर जो कुछ पड़े, भगवान का नाम लेकर काट देना।

उसका सिर लटक गया और साँस बन्द हो गई। रामू चिल्लाकर माँ से लिपट गया, मानो मौत का विकराल मुँह देख रहा हो। बिटिया ने माँ के अंचल में मुँह छिपा लिया और प्रतिमा इस तरह सिर पीटने लगी, मानो अनाथ हो गई हो।

हत्या

पण्डित रुद्रनाथ के घर में किसी देवी का अभिशाप है कि बहुएँ आने के दो चार साल बाद ही स्वर्ग की राह लेती हैं। ऐसा कोई मर्द नहीं हुआ, जिसकी तीन शादियों से कम हुई हों। रुद्रनाथ के पिता की पाँच शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ तीन भाई थे, तीनों ही की तीन-तीन शादियाँ हुईं। रुद्रनाथ के दोनों जवान लड़कों की भी दो-दो शादियाँ हो चुकी हैं। बहुएँ आती हैं, साल छः महीने में उन्हें भूत लग जाता है। कुछ झाड़-फूँक होती है, फिर मालूम होता है कि बहू का अन्त हो गया। फिर उसके दूसरे ही महीने बेटे की शादी की बात-चीत होने लगती है। मुहल्ले के अन्य घरों में भी यही हाल है। इसलिए इसे साधारण व्यवस्था समझना चाहिए। रहीं नीच जातियों की स्त्रियाँ, वे समझती हैं

कि बड़े आदमियों के घर की औरतें पूर्व जन्म के किसी पुण्य-फल से इतनी जल्द दुनिया में विदा हो जाती हैं। बेचारी नीच जाति की औरतों को तो यमराज भी नहीं पूछते। जिनकी यहाँ पूछ है, उन्हीं की वहाँ भी पूछ है !

रुद्रनाथ का बड़ा लड़का चन्द्रनाथ जब पन्द्रहवें साल में था, तो उसका पहला ब्याह हुआ। महीने भर यहाँ रह कर बहू विदा हो गई। साल भर के बाद वह फिर आई और मर कर ही गई। छः महीने के अन्दर चन्द्रनाथ का दूसरा ब्याह हो गया। लड़की का मैका गंगा किनारे था, रोज़ नहाने जाती। जल भी गंगा जी से लाती थी। यहाँ बन्द कोठरी में रहना पड़ा, न किसी से भेंट, न किसी से मुलाकात। न कहीं आना, न जाना। उसे बड़ा बुरा मालूम हुआ। बहू किसी से बोल नहीं सकती। जो कुछ कहना हो अपनी सास से कहे। हँसे-बोले किससे ? यही क़ैद दूसरे घरों में भी है। बेचारी किसी से दो बात बोलने के लिए तरसती रहती थी। जब कभी कहारिन या पिसनहारिन को पकड़ पाती तो उसका जी चाहता उससे बातें ही किया करे। उसकी बातें ही न खतम होतीं ; उधर मैना देवी का नादिरशाही हुक्म था कि किसी से मत बोलो। यह निषेध उसे पाँव की बेड़ी की तरह कठोर लगता। और वह किसी-न-किसी उपाय से उसे तोड़ने की चेष्टा करती रहती थी।

एक दिन मैना की नज़र पड़ गई। गुलाब, गोबर फेकनेवाली चमारिन से हँस-हँसकर इस तरह बातें कर रही थी, मानो जीवन का इससे बड़ा सुख दूसरा नहीं है।

मैना देवी आग बबूला हो गईं। आँखें निकाल कर बोलीं—मैंने तुझे समझा दिया कि इन नीच औरतों से बातचीत न किया कर; लेकिन जैसे तुझे कुछ परवाह ही नहीं। इसी से मैं कहती थी कि नीच कुल की लड़की मत लाओ, वह कुलीन घरों का रहन सहन क्या जाने। लेकिन मेरी कौन सुनता है, रुपये देखे तो फिसल पड़े। बहूरानी का चमारिनों और कहारिनों से बहिनापा है। आज तो मैं छोड़े देती हूँ, लेकिन आगे किसी से बातें करते देखा तो मैके ही का पानी पिलाऊँगी। अपने कुल की नाक नहीं कटवानी है।

गुलाब ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या रात-दिन घर में पड़े-पड़े मरूँ? इतना सुनना था कि मैना को भी जैसे भूत सवार हो गया। कुलटा, कुलच्छिणी, बेहया और जो-जो मुँह में आया बकती रहीं। इतने ही से सन्तोष न हुआ। पण्डितजी से लगाया, और चन्द्रनाथ को ऐसी बुरी तरह डाँटा कि बेचारा रोने लगा।

(२)

रात को चन्द्रनाथ जब घर में सोने गया तो गुलाब से बोला—यह तुम्हारा क्या स्वभाव है जी कि तुम्हें कोई कितना ही समझाये, अपने मन की ही करती हो; यह भी कोई क़ायदा है कि बड़े घर की बहुएँ नीच औरतों से बातचीत करें? मैंने तो तुम्हारी जैसी स्त्री नहीं देखी।

गुलाब भी भरी बैठी थी; बोली—हाँ, बात तो ऐसी ही है। औरतें देखी होतीं तो जानते कि उनसे कैसे व्यवहार करना चाहिए।

'हाँ, ठीक है; हम लोगों का तो सिर फिर गया है, जो कुत्तों की

तरह भूँका करते हैं। अम्मा बुड्ढी हो गईं लेकिन उनकी बोली आज तक किसी ने नहीं सुनी। तुम्हारे पीछे मुझे भी बातें सुननी पड़ती हैं।'

'तो आखिर किससे बोलूँ?'

'किसी से बोलने की ज़रूरत नहीं है।'

'और जो मैं कहूँ, तुम भी किसी से न बोलो, तब?'

'मुझसे तुम ऐसा नहीं कह सकतीं।'

नीचे से मैना देवी आकर कोठे के द्वार पर खड़ी हो गईं और बोलीं—इस बेशरम के मुँह क्यों लगता है बेटा। ले जा इसे उस पापी के घर भेज आ, जो इसे मेरे गले मढ़ गया है। बातों में तो कोई इससे जीत ही नहीं सकता। न जाने इसके माँ-बाप कैसे हैं, जिसके ऐसी लड़की है। तुम्हारे दादा ने आज खाना नहीं खाया। इसी सोच में पड़े रहे कि न जाने आबरू कैसे रहेगी। इस कलमुही ने सारे घर का नाक में दम कर दिया। न जाने कब इसका पौरा उठेगा!

गुलाब ने कोई जवाब न दिया। मन में बार-बार ज्वाला-सी उठती थी, लेकिन मुँह तक आते-आते वह पानी हो जाती थी। यहाँ वह अकेली है। ये लोग उसे चाहे मार भी डालें तो वह क्या कर सकती है। इसी-लिए भगवान ने उसका जन्म दिया था।

(३)

एक दिन गाँव में एक बारात आई। गुलाब का जी न माना, खिड़की पर खड़ी होकर देखने लगी। चन्द्रनाथ के मित्र खिड़की के नीचे ही खड़े थे। संयोग से उनकी निगाह उस पर पड़ गई। दिल में शरमाए तो नहीं,

चन्द्रनाथ से बोले—देखो तुम्हारी श्रीमती जी खिड़की के सामने खड़ी हैं। चन्द्रनाथ ने आँख ऊपर उठाई तो गुलाब को खड़ी देखा। अब क्या था। इतना भयंकर अपराध! कुलीन घर की बहू और खिड़की के सामने खड़ी हो! झल्लाए हुए घर में आए और गुलाब से बोले—क्यों जी, तुम हमारी नाक कटवा कर ही दम लोगी? अब तुम इतनी बेशर्म हो गईं कि सारे महल्ले के महल्ले से आँखें लड़ाती फिरती हो! ऐसा जी चाहता है कि या तो आप ज़हर खाकर सो रहूँ या तुम्हारा ही गला घोट दूँ। मैं तो तुमसे हार गया। न तुम मरोगी न मेरा गला छूटेगा।

गुलाब को काटो तो लहू नहीं। उसके पास कोई जवाब न था, कोई सफ़ाई न थी। अपराधी भाव से बोली—अगर मैंने इतना बड़ा अपराध किया है, तो मुझी को क्यों न मार डालो।

'तुम जैसी बेहयाओं से मौत भी डरती है।'

सहसा चन्द्रनाथ का छोटा भाई रामनाथ आकर बोला—भैया, तुमने आज भाभी की करतूत सुनी—उन्होंने हमारी नाक कटवा ली। आज पंडित रामशंकर ने इन्हें खिड़की पर खड़े देखा। वह सबके सामने कहते थे। मारे शर्म के मेरा सिर नीचा हो गया और क्या कहूँ।

गुलाब के मुँह से निकला—अब तुम्हारी बारी है; तो जो सज़ा चाहो, तुम भी दे लो। मैं तो घर भर का लात खाने आई ही हूँ।

चन्द्रनाथ ने कहा—सज़ा वह नहीं देगा, मैं दूँगा। जितना ही मैं तरह देता हूँ उतना ही तू और बढ़ती जाती है!

यह कहने के साथ ही उसने पाँव से जूता निकाला और गुलाब की पीठ पर तड़ातड़ चार-पाँच जूते जमा दिये। बोला—फिर जाएगी खिड़की

पर ? तुझको शर्म नहीं है, हम लोगों को है। मेरे घर में तेरी बेशर्मी नहीं चलने पाएगी। हो गया दिमाग़ ठीक कि और चाहिए ?

(४)

कई महीने बीत गये हैं। गुलाब गर्भवती है। रात-दिन कोठरी में बैठे-बैठे उसे संग्रहणी हो गई है। गुलाब-सा मुँह सूखकर पीला हो गया है। खाना अच्छा नहीं लगता, दवा कोई देता नहीं। जब से मार पड़ी थी, किसी ने उसका मुँह नहीं देखा। न वह किसी से बोली। एक ही मार ने हमेशा के लिए उसे ठीक कर दिया। दिन भर खाट पर पड़ी रहती। उससे उठा नहीं जाता। लेकिन मैना देवी इसे भी उसकी बेशर्मी समझती हैं। छोटे-बड़े का तो लिहाज इसे है ही नहीं। कोई जाय, कोई आये, बस लम्बी ताने पड़ी रहती है मानो इसी को तो नोखे का बच्चा होने वाला है, और किसी को तो लड़के हुए ही नहीं।

चन्द्रनाथ ने अब गुलाब से कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। उसकी ओर से अब वह निराश हो गया है। ऐसी निर्लज्जा को कोई कहाँ तक समझाये ? जिसे न मार का डर है, न गाली की लाज, वह जो चाहे वही कर सकती है। मैं अगर हारा तो इसी स्त्री से।

आज गुलाब के पेट में दर्द है। मगर किसी से कुछ कह नहीं सकती, खाट पर पड़ कर कराह रही है। कभी उठ बैठती है, कभी लेट जाती है, कभी खड़ी हो जाती है। हर बार आसन बदलने से उसे कुछ विश्राम का अनुभव होता है। लेकिन एक ही सेकेन्ड में फिर वैसी ही पीड़ा होने लगती है। मुँह से बार-बार यही वेदना से भरा हुआ शब्द निकलता है—हाय भगवान्, अब नहीं सहा जाता !

घर का कोई आदमी उसके पास नहीं फटकता। केवल महरी उसका तड़पना देख रही है। किन्तु मैना देवी के भय से उसकी भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। आखिर जब उससे न रहा गया, तो गुलाब के पास जाकर बोली—कैसा जी है बहू जी ?

गुलाब ने करुण नेत्रों से उसे देख कर कहा—तुम यहाँ से चली जाओ माता, नहीं अम्मा जी देख लेंगी तो मेरी भी दुर्गति करेंगी, तुम्हारी भी दुश्मन हो जायँगी।

महरी दयार्द्र होकर बोली—तो अपनी नौकरी ही लेंगी या किसी की जान मारेंगी। अब यह तो नहीं हो सकता कि तुम यों छटपटाती रहो, और मैं खड़ी देखा करूँ। हम लोग कहने को नीच जाति हैं, लेकिन हमारे यहाँ भी ऐसा नहीं होता कि किसी भले आदमी की लड़की लाकर उसे दुःख में बन्द कर दें। ऐसा अन्धेर तो मैंने कहीं नहीं देखा। बहू न भई कैदिन भई। बड़े घर की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं। यह पर्दा है कि जान मारना है।

गुलाब ने हाथ जोड़ कर कहा—माता, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, यहाँ से चली जाओ, नहीं मेरी जान की कुशल नहीं है।

मैना के सतर्क कानों में इन बातों की आहट पड़ गई। दबे पाँव आकर बहू की कोठरी के द्वार पर खड़ी हो गई और कान लगा कर सुनने लगी। आँखों में खून उतर आया। महरी को डाँटकर बोली—अच्छा, बस रहने दे। आई है वहाँ से बहू की सगी बनकर! हम लोग नाई, कहार नहीं हैं कि हमारी बहुएँ गली-गली नाचती फिरें। चली है अपनी बिरादरी का बखान करने! तू क्यों आई यहाँ? तू कौन होती है मेरी बहू से बोलने वाली?

महरी ने देखा कि बहू जी के मालकिन का क्रोध बढ़ रहा है, तो चुपके से खिसक गई। मैना गुलाब के सिर हो गई। अब क्या पूछना है, अब तो दुखड़ा रोने को महरी मिल गई।

गुलाब ने आँखों में आँसू भर कर कहा—अम्मा जी, मैं आपका चरण छूकर कहती हूँ, मैंने महरी से कुछ नहीं कहा। मैं तो उससे बार-बार कहती रही, यहाँ से चली जा। आप उसको बुला के पूछ लीजिए कि मैंने उससे क्या कहा।

मैना ने उसी क्रोध में जो कुछ मुँह में आया कहा। लेकिन गुलाब को कुछ सुनाई न दिया। उसके पेट में फिर दर्द होने लगा था।

(५)

बाहर से चन्द्रनाथ आए। मैना ने उसको आड़े हाथों लिया—अब या तो तू ही इस घर में रह या मैं ही रहूँ। तेरी बहू के साथ अब इस घर में मेरा निबाह न होगा। अब महरी को बुलाकर उससे दुखड़ा रोया जाता है। हम चमार हैं, डोम हैं, बल्कि उनसे भी गए बीते। बहुओं की जैसी दुर्दशा हमारे घर में होती है वैसी और कहीं नहीं होती! कुछ कहो तो लड़ने को तैयार। इस चांडालिन ने पुरखों के मुँह में कालिख लगा दी।

चन्द्रनाथ बड़बड़ाया—वह अपने बाप को क्यों नहीं कोसती कि चमार के घर पटक दिया? अब से भला है, चली जाये किसी कुलीन के घर।

इसी क्रोध में भरा हुआ वह गुलाब की कोठरी के दरवाज़े तक आया तो देखा, गुलाब अचेत पड़ी है और शिशु रो रहा है। उल्टे पाँव दौड़ा हुआ माँ के पास आया और माँ से यह हाल कहा।

अब मैना को शायद कुछ खेद हुआ। उसने समझा था, वह मक्र किए हुए पड़ी हुई है। दौड़ी हुई ऊपर गई। बच्चे को उठा लिया, और चन्द्रनाथ को पुकार कर बोली—जाकर अपने बाप से कह दो, दाई बुलवा लें, भगवान ने उनके पोता दिया है। पंडित जी दाई को बुलाने के लिए आदमी भेज कर घर में आ बैठे और पत्रा खोल कर देखने लगे, बच्चा कैसे लग्न में पैदा हुआ है।

थोड़ी देर में दाई आ गई, और बहू को देख कर बोली—क्या बहू के पास कोई था नहीं; मुझे और पहले क्यों न बुला लिया? इनके तो दाँत बैठ गए हैं; जी डूब गया है। बच्चे की नाल तो मैं काट दूँगी, लेकिन बहू मेरे मान की नहीं है। किसी मेम डाक्टर को बुलवाइए। नहीं पीछे दोष दोगी कि पहले क्यों नहीं बताया।

मैना नाक सिकोड़ कर बोली—मेरे घर कभी न मेम आई है न आवेगी। बहू को हुआ ही क्या है कि मेम को बुलावें? कोई नई बात थोड़े हुई है?

मुहल्ले की दो चार बड़ी-बूढ़ियाँ यह खबर सुनते ही आ पहुँची थीं, और सौरगृह के द्वार पर खड़ी थीं। उनकी भी यही सलाह हुई कि मेम सेम के बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी के दस-दस बीस-बीस बच्चे हो चुके थे; लेकिन मेम किसी के घर नहीं आई थी। उस पुरानी प्रथा को आज कैसे तोड़ा जाय?

दाई बोली—भैया, मुझे तो डर लग रहा है। देखते नहीं हो बहू कैसी हुई जाती हैं?

मैना ने उसे कड़ी आँखों से देखा। तुम तो दाई, ऐसी घबड़ा रही

हो जैसे आज पहली बार जच्चा-बच्चा देखा हो। कुछ नहीं तो सैकड़ों ही बच्चे जनाए होंगे। मेम किसके घर आती है? हम क्रिस्तान थोड़े ही हैं कि मेम को घर पर बुला लें।

दाई ने देखा कि यहाँ उसकी कोई नहीं सुनता, तो बाहर निकल आई और आँगन में आकर पंडित जी से बोली—जो अभी तक बैठे लगन विचार रहे थे—मालिक! बहू जी बहुत बेहाल हैं, मुझे तो उनका बचना मुश्किल मालूम होता है। नाड़ी का कहीं पता नहीं, आँखें ऊपर को टँग गई हैं। मैंने कहा कि किसी मेम को बुला कर दिखा लो, लेकिन मेरी कोई नहीं सुनता। मैं तुमसे भी जताए देती हूँ। अब मेरा दोष नहीं है।

पंडित जी बोले—कैसी बातें करती हो दाई! तुम्हें क्या हो गया है? बच्चे के होने में दाई आती है, मेम नहीं आती। न आज तुम नए सिरे से आई हो, न मेरे घर में कोई नोखा बच्चा हुआ है।

दाई ने बहुत समझाया, लेकिन पंडित जी मेम बुलाने पर किसी प्रकार राज़ी न हुए। आखिर उसने कहा—अगर आप बहू को मारने ही पर लगे हैं, तो दूसरी बात है। नहीं, अब उनके बचने की कोई आशा नहीं है। रुपये-पैसे इसी दिन के लिए जोड़े जाते हैं। आप लोग न जाने क्या समझ कर जोड़ते हैं। रुपए आते जाते रहते हैं; लेकिन आदमी चला जाता है तो फिर नहीं आता। अब पंडित जी को भी कुछ शंका हुई। मैना को पुकार कर पूछा—अब बहू का जी कैसा है?

मेम के नाम ही से मैना की ईर्ष्या प्रज्वलित हो रही थी। उसके भी तो बच्चे हुए हैं। उसे भी तो इसी तरह पीड़ा हुई, वह भी तो प्रसूति-

ज्वर में महीनों पड़ी रही; जब उसकी बार मेम न आई तो अब कैसे आ सकती है। गुलाब ऐसी कहाँ कि दुलारी है कि उसके लिए मेम आवे? जीना होगा जीएगी, मरना होगा मरेगी। संसार में औरतों का कल्याण नहीं है। बोली—जी अच्छा है और क्या। नखरा किए पड़ी है। तुम औरतों का हाल क्या नहीं जानते?

पंडितजी ने कहा—दाई तो डाक्टर बुलाने को कहती है। लेकिन मैंने तो कह दिया कि डाक्टर को बुलाकर अपने घर की बेइज़्ज़ती न कराऊँगा। मेम आवेगी तो सबसे पहले शराब माँगेगी। मेरे जीते जी यह अधर्म न होगा।

रात के दस बज गए, गुलाब की उल्टी साँसें चल रही हैं और सब औरतें बैठी तमाशा देख रही हैं। एकाएक उसने एक हिचकी ली और अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। बेचारी को बच्चे का मुँह देखना भी नसीब न हुआ।

मैना छाती पीटने लगी—हाय भगवान, मेरी क्यों दुर्दशा कर रहे हो? कितने अरमान से बेटे का ब्याह किया था। मगर कोई हौसला पूरा न हुआ।

लाश कपड़े से ढककर बाहर लाई गई, घर में रोना पीटना मच गया।

एक बुढ़िया ने मैना को समझाया—दीदी अब क्यों रोती हो, सलामत रहे बेटा, फिर बहू आ जावेगी!!!

अनोखा ब्याह

गंगादीन बनिया के पास बुढ़ौती में चार पैसे हो गये तो ब्याह करने की सूझी। जब जवान था, तब उसके पास पैसे न थे और किसी ने पूछा भी नहीं। अगर कोई आया भी तो उसने रुपये माँगे। उस वक़्त गंगादीन की एक छोटी-सी दूकान थी। रुपये कहाँ थे। अब वह रुपये वाला है और ब्याह करना चाहता है। मगर रुपये अब भी न देगा। अगर कोई ग़रज़मन्द आ जाय, तो वह ब्याह कर लेगा। स्त्री आयेगी, उसके बाल-बच्चे होंगे, खायेगी और पड़ी रहेगी। रुपये वह क्यों दे ?

संयोग की बात। जो उसकी जवानी में न हुआ, वह बुढ़ापे में हो गया। एक दिन एक लड़कीवाला आ ही तो फँसा। गंगादीन का कारो-

बार देखकर फूल उठा और तुरत अपनी कन्या से उसके ब्याह की बात-चीत छेड़ दी। गंगादीन ने देखा, कुछ देना न पड़ेगा, झट राज़ी हो गया। लग्न मुहूर्त वग़ैरः सब तय हो गया।

तैयारियाँ होने लगीं। कपड़े आये, जोड़े सिलने लगे; सोनार आया, गहने बनने लगे। धूम से ब्याह होगा, खूब मिठाइयाँ बनेंगी और सारा मुहल्ला बारात में जायगा। बाजा भी आ गया, फुलवारी, आतिशबाज़ी और पालकी वग़ैरह, सभी का इन्तज़ाम हो गया। बिरादरी में नेवते भेज दिये गये। मेहमान चार-छः दिन पहले से जमा होने लगे।

कल बारात जायेगी। सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। गंगादीन कढ़ाव के पास खड़े मिठाइयाँ निकलवा रहे हैं। एकाएक उसी वक़्त लड़कीवाले महाशय रामहरख वहाँ आ पहुँचे। राम-राम हुआ। गंगादीन ने उन्हें बड़े आदर से बैठक में लाकर पूछा—कैसे चले?

रामहरख ने बहुत सकुचाकर कहा—बात यह है कि लड़की की माँ तुमसे लड़की का ब्याह करने पर राज़ी नहीं होती। कहती है, जब बूढ़े वर से कन्या ब्याहूँगी तो एक हज़ार रुपया लाकर सामने रख दो। कितना समझाया, मानती ही नहीं। हारकर तुम्हारे पास आया हूँ। जैसा उचित समझो, वैसा करो। मैं तुम्हारे सामने मुँह दिखाने लायक़ नहीं हूँ। लेकिन जहाँ अपना कोई बस नहीं है वहाँ क्या किया जाय? कन्या मेरे विधवा भावज की है। मेरी होती तो कोई बात न थी। अब मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।

गंगादीन गर्म होकर बोला—यह तो तुम बड़ा अनर्थ कर रहे हो

साहु जी ! तुमने पहले ही उस राँड़ से क्यों न पूछ लिया ? मुझे इस बुढ़ापे में ब्याह की कौन बड़ी लालसा थी ? जब सब तैयारी हो चुकी, मेरे चार-पाँच हज़ार बिगड़ चुके, तुम यह सन्देशा लेकर आये, अब बताओ मैं क्या करूँ ?

रामहरख ने सिर झुका कर कहा—मैं क्या बताऊँ, मेरी तो अक्ल कुछ काम नहीं करती। बीच में पड़ कर तुम से भी बुरा बना, उससे भी लड़ाई की। मगर बिना रुपये लिए वह ब्याह न करेगी। इतना कह सकता हूँ कि कन्या लक्ष्मी है। सुन्दर भी, सुशील भी। तुम्हारा घर बन जायगा।

गंगादीन ने दाँत पीसकर कहा—ऐसा क्रोध आता है कि पुलिस में रपट कर दूँ। देखूँ, कैसे ब्याह नहीं करती। लेकिन हँसी को डरता हूँ।

'बिरादरी में दोनों ओर की बदनामी होगी। तुम्हारा कितना नाम है।'

'इसी नाम की लाज है। नहीं, मुझे क्या चिन्ता थी। अदालत में दावा कर देता।'

'ऐसे शुभ काज के लिए एक हज़ार का मुँह मत देखो।'

'अच्छा भाई, जैसी तुम्हारी इच्छा ! मैं भीतर से आकर ठीक-ठीक जवाब दूँगा।'

(२)

गंगादीन अपनी एकान्त कोठरी में जाकर सोचने लगा। जब मैंने पैसे-पैसे को दाँत से पकड़ कर इतने रुपये बनाये हैं, तो क्या एक हज़ार

यों ही उठाकर दे दूँ ? बरसों एक जून खाकर रहा हूँ। अपने हाथों बोरियाँ उठाई हैं। बोझ ढोया है, किस लिए ?

लेकिन आखिर ये रुपये किस काम आवेंगे ? मेरे बाद कौन भोगेगा ? मैं अमृत की घरिया पीकर तो आया नहीं हूँ। कहता है, लड़की बड़ी सुन्दर है, बड़ी सुशील है। और आदमी रुपये-पैसे जमा ही किस लिए करता है। कोई खानेवाला तो चाहिए ही ? और जब चार दिन में सब कुछ उसी का हो जायगा, तो अभी एक हज़ार दे देने में क्या हरज है ? ब्याह न हुआ तो कोई नाम को रोनेवाला भी तो नहीं। नाम ही बुझ जायगा।

वधू का चित्र उसकी आँखों में नाचने लगा। उसने तिजोरी खोल-कर सौ-सौ के दस नोट निकाले और बाहर आकर रामहरख के हाथ में रख दिया।

रामहरख ने कृतज्ञ होकर कहा—तुमने मेरी लाज रख ली और अपनी मरजाद भी निबाही। अब सब काम बन जायगा।

गङ्गादीन ने गर्व से कहा—यह तुम्हारा मुँह देखकर दे रहा हूँ। नहीं तो दावा करके उल्टा और तावान ले सकता था। खाने-पीने का सामान ठीक रखना।

'सब ठीक हो जायगा।'

'बारात बड़ी होगी।'

'कोई चिन्ता नहीं।'

(३)

रामहरख रुपये लेकर घर पहुँचा और अपनी भाभी के हाथ में देकर

बोला—बुड्ढा ब्याह के पीछे अन्धा हो गया है। जब मैंने जाकर कहा कि बिना हज़ार रुपये लिए लड़की की माँ ब्याह करने के लिए राज़ी नहीं है, तो पहले तो बहुत उछला-कूदा, मगर जब मैंने ज़रा दब से बातें की, तो लाकर गिन दिये। लल्ली का ब्याह तो अबकी करना ही है, और किस तरह रुपये मिलते।

भाभी ने गम्भीर भाव से कहा—लेकिन द्वार पर बारात आयेगी तो क्या करोगे? कितनी बदनामी होगी?

राम०—मैंने अपना नाम थोड़े ही बतलाया है। सिर्फ़ गाँव का नाम बतला आया हूँ। जिस दिन गाँव में बारात आयेगी थोड़ी देर अजीब समा छायेगा।

भाभी—आखिर वह बारात किसके दरवाज़े लगेगी?

राम०—बारात किसी के दरवाज़े न जायेगी। साला दूल्हा बना बाजे-गाजे के साथ गाँव में घूमता रहेगा। उसको ब्याह की जैसी चाट है, उसका अच्छा मज़ा पायेगा!

भाभी—जब वह तुम्हें देखेगा तो पहचान लेगा। उस समय तुम क्या जवाब दोगे?

राम०—भाभी, आप घबड़ायें नहीं, मैंने इसके लिए सोच समझ लिया है।

(४)

गङ्गादीन के घर चहल-पहल है। द्वार पर बाजा बज रहा है। बाराती लोग सजे-सजाए जमा हैं। मंडप के नीचे गङ्गादीन सबको काम सौंप रहे हैं। देखो भाई, सब लोग अपना ही घर समझो, किसी

तरह की बदनामी न होने पावे। मेरी आप सब से यही बिनती है। मैं उस बड़ी दूल्हे की हालत में कुछ नहीं कर पाऊँगा। सब काम तुम्हीं सब को करना है।

जग्गू सेठ हँस कर बोले—भाई क्यों घबड़ाते हो? तुम्हारी हँसी होगी, तो क्या हम सबों की बाक़ी रहेगी?

गङ्गादीन बोले—हाँ भैया, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। मैंने तो तुम्हें सदैव अपना बड़ा भाई माना है। और आज भी तुमसे वही प्रेम है।

नेछू होते समय एक स्त्री हँसकर बोली—लाला, ठीक से ससुराल जाना। देखो वहाँ स्त्रियाँ मज़ाक़ करेंगी। सोच-समझकर जवाब देना।

गङ्गादीन हँस कर बोले—सब को देख लूँगा। क्या लड़का हूँ।

दरज़ी ने आकर जोड़ा पहनाया और अपना नेग ले गया। चमार ने जूते पहनाए। माली ने माला गले में डाली। बूढ़ी बुआ ने काजल लगा कर खासा बन्दर बना दिया। और बोली—बेटा, मेरा भी नेग दे दो।

गङ्गादीन हँस कर बोला—बुआ, जो गाड़ रखे हैं, वह मुझे दे दो तो मैं तेरी बहू पर न्योछावर करता आऊँगा।

[५]

बारात माधोपुर पहुँची; किन्तु कोई आदमी अगवानी के लिए नहीं आया। कुछ स्त्रियाँ और बच्चे जमा हो गए। बाजों की आवाज़ से कान के परदे फटे जाते हैं। आतशबाज़ी खूब छोड़ी जा रही है कि शायद अब भी सोया हुआ 'समधी' जागे! किन्तु समधी मर-सा गया है, जागने का नाम ही नहीं लेता।

एक बराती ने एक स्त्री से पूछा—यही माधोपुर है न ?

स्त्री ने कहा—हाँ माधोपुर तो यही है। तुम्हें कहाँ जाना है ?

'इसी गाँव में तो आए हैं।'

'किस के घर ?'

'रामहरख साहु के घर।'

'ई नाम का तो इस गाँव में कोऊ नाहीं है।'

गङ्गादीन पालकी से कूदे और गिरते-गिरते सँभल कर बोले—है क्यों नहीं, वह साँवला-सा लम्बा आदमी ? उसी का तो नाम रामहरख है।

कई स्त्रियाँ एक साथ बोलीं—ऐसई गाँव में कोऊ नाहीं है। तुम सब के सब भाँग खाय के तो नाहीं चले हो ! ई गाँव माँ तो न कतहूँ ब्याह है न सगाई है ! सब जने माधोपुर में डाका पड़िहो काथों !

गङ्गादीन बिगड़ कर बोला—हम लूटने चले हैं, कि मैं खुद ही लुट गया हूँ।

इतने में और लोग भी जमा हो गये, और झगड़ा होने लगा।

'यहाँ किसी की लड़की का ब्याह नहीं है। सीधे से चले जाओ।'

'चले क्यों जाँय ? ब्याहने को आये हैं, तमाशा करने नहीं।'

गाँव भर में बारात के आने की बात बिजली की तरह फैल गई। पर मालूम नहीं, किस के घर ब्याह है। सब लोग जमा होकर गाँव के ज़मींदार ठाकुर गिरिधर सिंह के पास गए। सेठ तुलसीराम बोले—मुझे तो जान पड़ता है कि यह सब डाकू हैं। इसी तरह ठग भी धोखा देकर गाँव का गाँव लूट लेते हैं। इस तरह की बारात तो मैं यही देखता

हूँ कि बारात आए और किसी को मालूम भी न हो। ठाकुर साहब को भी यही सन्देह हुआ। बोले—तो भाई, हम सबों को भी होशियार रहना चाहिए। सेठ जी, तुम्हारा कहना ठीक है। कौन जाने रात को जब हम लोग ग़ाफ़िल हो जायँ, तो ये सब लाव-लश्कर के साथ गाँव लूट लें।

गाँव में भाँड़ों की एक मण्डली भी थी। वे तरह तरह के रूप भरने में कुशल थे। शादी-ब्याहों में उनकी टोली अच्छा मेहनताना पाती थी। उनके सरग़ना ने बीड़ा उठाया कि वह इन डाकुओं को किसी हिकमत से भगावेगा और गाँव वालों पर कोई आफ़त न आएगी। गाँव वालों ने भी सोचा, अगर इन डाकुओं से खुल्लम-खुल्ला लड़ाई की गई, तो इतने आदमियों के सामने गाँव वाले क्या कर लेंगे। फिर उन सबों के पास बन्दूकें भी तो होंगी। सारे गाँव को क्षण भर में भून डालेंगे। भाँड़ों का प्रस्ताव तुरत स्वीकार कर लिया गया।

[६]

आधे घण्टे में पुलीसवालों की एक पलटन वर्दी पहने बिल्ले लगाए सामने आकर खड़ी हो गई। सरग़ना दारोग़ा बना हुआ था। गिरिधर सिंह ने हँस कर कहा—ठीक है। जाओ विजयी होकर आओ।

सरग़ना बोला—हुज़ूर भी तो चलें। तमाशा कौन देखेगा?

कुँवर ने कहा—मुझे तो डर है, कहीं हँस न पड़ूँ कि सारा खेल ही चौपट हो जाय।

'मेरे ऊपर मेहरबानी करके हँसी थोड़ी देर रोक लीजियेगा।'

'मेरी हँसी रुकती तो नहीं।'

'तो तुम चलो सेठ जी!'

'ना भैया, कहीं मार-पीट हो जाय तो मुफ़्त में जान जाय।'

आखिर कुँवर गिरिधरसिंह ही भाँड़ों की पलटन के साथ चले।

आगे-आगे पुलिस सब-इंसपेक्टर, उसके पीछे कांस्टेबिलों की फ़ौज और सब के पीछे ठाकुर गिरिधर सिंह चले।

बारात में पहुँचते ही दारोग़ा ने डाँटकर पूछा—बतलाओ किसके घर ब्याहने आये हो?

पुलिस को देखते ही सारी बारात में सन्नाटा छा गया। सब के सब ऐसा सिटपिटाए कि किसी के मुँह से बात न निकली। गङ्गादीन जोड़ा-जामा पहने पालकी के पीछे खड़े थे। थानेदार ने फिर डाँटा—तुम दूल्हा हो, बताओ किसके घर बारात लाये हो?

गङ्गादीन बहुत साहस करके बोला—रामहरख के घर हजूर! एक हज़ार रुपया भी दिया है सरकार!

दारोग़ा कड़क कर बोला—तू ठग है साला! यह स्वांग भरकर गाँव में डाका डालने आया है। रामहरख नाम का कोई आदमी इस गाँव में नहीं। तुम सब डाकू हो। वजीरसिंह, इन सबों को गिरफ़ार करके थाने पर ले चलो। डकैती में सबका चालान करूँगा! बदमाश! बारात लेकर डाका डालते हैं!

गङ्गादीन मौर-जामा फेंक कर दारोग़ा साहब के पैरों पर गिर पड़ा और बोला—हजूर! मर जाऊँगा। बड़ा गरीब हूँ। मैं क्या जानूँ डाका कैसा होता है।

'मैं कुछ नहीं सुनना चाहता!'

'सरकार मर जाऊँगा !'

'वज़ीरसिंह, तमाशा क्या देखते हो ?'

वज़ीरसिंह हथकड़ी लेकर आगे बढ़ा तो गङ्गादीन रो कर बोला—सरकार, आपकी जो फ़रमाइश हो, वह पूरी करवा लीजिए। मुझ दीन-दुःखी को फाँसी मत दो। कहाँ से कहाँ मैं ब्याह के झंझट में पड़ा। एक रोटी खाता था और आराम से पड़ा था। बुढ़ापे में यह दाग़ न लगाइये सरकार !

दारोग़ा ने हँस कर कहा—नहीं, अभी तुम बूढ़े क्यों हो ! अभी तो तुम ब्याह करने आये हो।

'सरकार ! उसी का तो फल भोगता हूँ !'

दारोग़ा और ज़ोर से हँसा—फल क्या भोगते हो। सरकार के मेहमान होगे। चक्की पीसोगे और आराम से रहोगे। और चाहिए क्या ?

'सरकार ! मैं सब देकर यहाँ से चला जाऊँगा। और ब्याह का नाम भी न लूँगा। बड़ी भूल हुई सरकार ! अब कान पकड़ता हूँ।'

'चुप रह बदमाश ! कह दिया, कुछ नहीं सुनना चाहता ! मुझे रिश्वत दिखलाता है गधा !'

गिरधर सिंह ने सिफ़ारिश की—दारोग़ा साहब, बेचारा मर जायगा, जो देता है लेकर छोड़ दीजिए।

दारोग़ा ने गम्भीर होकर कहा—कैसे छोड़ सकता हूँ कुँवर साहब ! मुझे भी अपनी इज़्ज़त का ख्याल है। फिर मेरे अफ़सर को मालूम हो जाय तो नौकरी से भी हाथ धोना पड़े। आपको तो उनका स्वभाव मालूम ही है।

कुँवर साहब ने हँसकर कहा—अगर दूल्हा साहब एक बार मेरे द्वार पर चल कर नाच दें, तो मैं जिम्मा लेता हूँ कि आपके ऊपर कोई आँच न आने पायेगी। मैं कह दूँगा, मैंने भाँड़ों का नाच कराया था। पूछिए, हैं तैयार नाचने को अपने ब्याह वाले कपड़े पहन कर?

दारोग़ा ने गंगादीन से पूछा—क्योंजी, ठाकुर साहब की शर्त मंज़ूर है?

गंगादीन ने दीनता से कहा—सरकार, मुझे नाचना तो आता नहीं।

मोटेराम तिवारी ने साँय से कहा—क्या तुझे नचनियों का सा नाचने कहते हैं? जैसा आता हो, उसी तरह नाचकर जी छुड़ाता नहीं? सरकार का कहना हो जाना चाहिए। तुम्हारे पीछे सब की जान आफ़त में पड़ी है।

कुँवर साहब हँसकर बोले—हाँ जी, जैसा तुम्हें आता होगा, उसी तरह नाचना।

फिर क्या था, बात की बात में सारा इन्तज़ाम हो गया और तमाशे को देखने के लिए तमाशगीरों की एक खासी भीड़ लग गई।

गंगादीन ने ज्यों ही नाचना शुरू किया कि लड़के तालियाँ बजाकर चिल्ला उठे—

'बुढ़वा आया दुलहिन ब्याहने,
बन गया यह भाँड़ जी!'

एक साथ ही वहाँ हँसी का बाज़ार लग गया।

एक बुढ़िया ने कहा—चार मन लकड़ी चाहिए थी, कि चले हैं बुढ़ापे में बहुरिया ब्याहने!

× × ×

भाँड़ों के सरग़ना ने कहा—हुज़ूर, ग़ुलाम को अब इनाम मिलना चाहिए।

'बेशक, तुम लोगों ने अच्छी चाल चली! जो कुछ मिला है, सब लोग बराबर बराबर बाँट लो।'

माधोपुर में अब भी इस अनोखे ब्याह की कभी कभी चर्चा होती रहती है।

कल की बात

[बीते हुए जीवन पर एक नज़र]

लेखक-गण

१. श्री अन्नपूर्णानन्द
२. श्री सुदर्शन
३. पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'
४. श्री जैनेन्द्रकुमार
५. श्री श्रीराम शर्मा बी० ए०
६. पं० बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०
७. रामचन्द्रजी शुक्ल
८. विनोदशंकर व्यास
९. डा० धनीराम प्रेम
१०. प्रो० सद्गुरुशरण जी अवस्थी
११. डा० श्रीनाथ सिंह
१२. मौलवी महेशप्रसाद आलिम फ़ाज़िल
१३. श्री आनन्दभिक्षु सरस्वती

लेखकों के जीवन की किसी एक घटना के विवरण का एक उत्कृष्ट संग्रह।

मूल्य १)

सभी प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

बरगद

[एकांकी शोकपर्यवसायी नाटक]

लेखक

कृष्णलाल श्रीधराणी

प्रस्तावना लेखक

काका कालेलकर

श्री हरिभाऊ उपाध्याय के आशीर्वाद सहित

बढ़िया गेट-अप

मूल्य ॥।)

सभी प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य